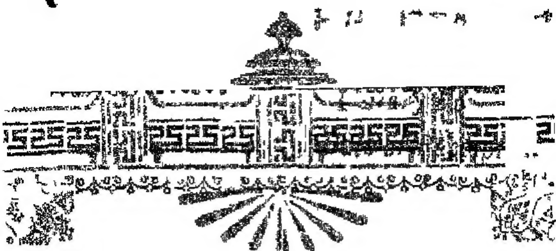


श्रीः



# सूर्य्यास्त ।

## ऐतिहासिक उपन्यास ।




लेखक—

गोविन्द वल्लभ पन्त ।



प्रकाशक—

श्री० हिन्दी काशी ग्रन्थमाला कार्य्यालय,

बनारस सिटी ।

ज्ञानभूषण प्रेस, त्रिलोचन काशी




# सूर्य्यास्त ।

## प्रथम परिच्छेद ।

### शत्रु नहीं मित्र ?

रात्रि के प्राय. द्वितीय प्रहर में मेवाड़—अंतर्गत उदयपुर के समीपस्थित शैलशिखर में एक अश्वारोही युवक भ्रमण करता हुआ दिखाई दिया चारों ओर सीमाहीन मेघमालाओं से घिरी हुई अरावली की पर्वत श्रेणियां हैं कहीं छोटी छोटी नदियाँ पर्वतों को धोती हुई कल कल शब्द से बह रही हैं। कहीं बड़े बड़े वटवृक्ष अपनी सुविशाल शाखा-प्रशाखाओं सहित खड़े हैं जिनको दूर से देखने पर पहाड़ों का भ्रम होता है स्थान स्थान पर दुर्भेद्य अरण्य हैं पत्तों का सांय सांय शब्द, नदियों की कलकल ध्वनि, झिल्ली की अविराम झंकार, घोड़ों की टापों का अस्पष्ट शब्द, दलित सूखे पत्तों की मरमर ध्वनि आदि एक में मिलकर एक विचित्र तान की सृष्टि कर रहे हैं भय से भरा होने पर भी वह स्थान नितान्त अप्रीतिकर नहीं है

चारों ओर अंधकार छाया है काले पर्वत, सघन वन और रजनी की अँधकार के मिलन से यह स्थान इतना तमपूर्ण हो गया है कि हाथ को हाथ नहीं सूझ रहा है

अश्वारोही की मूर्ति से राजपूत वीर का वीरत्व झलक रहा है दुर्भेद्य वन, भीम पर्वत, छोटी बड़ी नदियां कम

क्रम से उस वीर की गति रोकने लगीं, किंतु वह उन भयानक बाधाओं को सहज ही पार करने लगा मानो वह स्थान उससे और उसके अश्व से पूर्ण परिचित हैं सहसा एक तीर सन सन शब्द से आकर उसके कान के पास से चला गया उसने ज्योंही घोड़े को रोका दूसरा तीर उसके कवच में लग कर चूर्ण हुआ उसने समझा शत्रु समीप ही है थोड़ी देर में एक दूसरे अश्वारोही ने आकर उसके बाएं हाथ में बर्छे से वार किया. राजपूत वीर ने कहा–"यदि तुम मेवाड़--मित्र हो तो मेरा वध न करो मैं तुम्हारा शत्रु नहीं हूं, और यदि तुम मेवाड़ के शत्रु हो तो आओ,—अमरसिंह के हाथ से तुम्हारा बचना संभव नहीं "

आक्रमणकारी ने उत्तर न देकर तलवार से राजपूत को आघात पहुंचाया अमरसिंह ने भी विद्युत वेग से तलवार निकाल कर शत्रु के ऊपर चलाई अंधकार के कारण लक्ष स्थिर नहीं होता था, कुछ देर तक एक दूसरे के आघात व्यर्थ हुए, अंत में अमरसिंह की विजय हुई, उन्होंने बर्छे से उसका वक्ष विदीर्ण किया वह चीत्कार के साथ घोड़े पर से गिर पड़ा और प्राण त्याग दिया

अमरसिंह ने घोड़े से उतर कर उसके वस्त्र को टटोला मालुम हुआ, वह मेवाड़ का शत्रु था " दुरात्मन् मेवाड़ के शत्रुओ! जब तक तुम इस दशा को न पहुँचोगे तब तक भारत की उन्नति की आशा नहीं है" –कह कर अमरसिंह ने घोड़े पर चढ़ प्रस्थान किया। अभी तक अमरसिंह अन्यमनस्क थे, उनको बांए हाथ की चोट बिलकुल मालूम नहीं हुई थी अब; उन्होंने देखा हाथ से रक्त

धार बह रही है। घोड़े को बगल से लेजाकर वे शिघ्रही एक नदी के तट पर पहुँचे।

अमरसिंह दीर्घ विश्वास त्यागकर घोड़े से उतरे और नदीजल में वस्त्र भिगा कर घाव बांधा। इसके बाद हाथ पाँव धोकर तीरस्थित एक पत्थर पर बैठकर प्रकृति की शोभा निहारने लगे

शोभामयी ज्योति उस समय अपने मन से विश्वका शृंगार कर रही थी। रात्रि का तीसरा पहर था। प्रकृति शान्त, धीर और अलासित थी। सामने ही छोटी सी बूनास नदी चुपचाप बहती चली जा रही थी, चारों ओर अरावली पर्व्वत अपने ऊँचे मस्तक से मानो संसार का परि दर्शन कर रहा था। निकट ही नाथद्वार नगर के महल, मन्दिर, ध्वजा इत्यादि दिखाई दे रहे थे। सब नीरव और शांत थे। चन्द्रकिरण नदीनीर में, गिरिचूड़ा में तथा महलों में प्रतिबिम्बित होकर झलमला रही थी ऐसे समय अमरसिंह नाथद्वार के समीप बूनास के तट में एक शिलाखंड में बैठ भूत और भविष्य की भावनाओं में लीन हो रहे थे।

एक घंटा और बीता। ऊषाकी सहज शीतल वायु, नदीनीर के स्पर्श से अधिक शीतल होकर अमर सिंह के शरीर को स्पर्श करने लगी। वह उस शिलाखंड में ही सो गये। उनका प्रभुभक्त घोड़ा पास के जंगल में अपना अहार खोजने चला गया।

## द्वितिय परिच्छेद।

### दर्शन

कठिन परिश्रमके कारण अमरसिंह घोर निद्राच्छन्न हुए देखते देखते पूर्वाकाश में सूर्य का प्रतिबिम्ब प्रकट हुआ। प्रातःकाल के समीप होनेपर अमरसिंह ने जागकर देखा, चमत्कार!

एक परम सुंदरी किशोरी एक लता को अपने कोमल हाथ से कुचल कर उसका रस उनके घाव में धीरे धीरे गिरा रही है। अमर सिंह विस्मित, अवाक और मोहित हो गये। उनके और अधिक विस्मय का कारण किशोरी का योद्धावेश था सुन्दरी ने अमरसिंह की निद्रा भंग होती देख लज्जा और संकोच से सिर नीचा कर दो पग दूर खड़ी होगई और कुछ देर बाद बोली—

" राजपुत्र। आप मेरे व्यवहार से चमत्कृत हुए हैं ? वीरों की सेवा मेरा स्वभाव है,—आप राजपूत कुल भूषण है, राजपूत की जाति की लुप्तप्राय आशा के अधार हैं।"

रमणी का परम रमणीय सौन्दर्य, बात करते समय मनोहर भाव और स्वजाति प्रियता सूचक शब्द सुनकर अमरसिंह मोहित हो गये। आशापूर्ण हृदयसे उन्होंने सोचा, "कौन कहता है राजपूतों का अध:पतन हो गया है ?"

किशोरी ने कहा— " युवराज मैं अब जाती हूं "॥

अमरसिंह अबतक चुप थे; अब उनको बोलने की शक्ति हुई उन्होंने कहा-, "वीरसुन्दरी ! मैं तुम्हारी मोहिनी प्रकृति के दर्शन से मुग्ध हो गया हूं। मुझे तुम्हारा परिचय प्राप्त करने का साहस नहीं है तथापि तुम्हारे गुण साक्षी देते हैं कि तुम्हारा किसी महावंश में जन्म हुआ है। तुम क्यों कर इस समय यहाँ आई हो ?

सुन्दरी ने लज्जा सहित कहा-"क्या मेरे इस प्रकार इस विपिन में आने से युवराय नाराज हुए हैं ?"

अमरसिंह ने व्यस्त होकर कहा-" नहीं, ऐसा नहीं। यदि तुम इसका उत्तर न भी दोगी तो मैं असंतुष्ट न हूंगा।"

सुन्दरी ने कहा-" राजपुत्र ! आपने जो पूछा उसका उत्तर देना

मेरा कर्त्तव्य है। आप राजपूतकुल प्रदीप है । आप किसी के समीप अपरिचित नहीं है। , किन्तु मै आपके समीप बिलकुल अपरिचित हूं इस प्रकार प्रथम भेंट में ही पुरुष के साथ बातचीत करना कुल कामिनी के लिये श्रेयकर नहीं है। "

युवराज ने बाधा देकर कहा-" नहीं, ऐसी आशंका न करो, जिसका हृदय नित्य उच्च चिन्ताओं से परिपूर्ण है वह दोषी नहीं हो सकता। "

किशोरी कुछ क्षण सोचकर कहने लगी- "युवराज-क्षमाकरिये-आपके पिशाच-स्वभाव चाचा सूक्तसिंह अकबर के प्रियपात्र हुए है। और अधिक अनुग्रह प्राप्ति के लोभ से उन्होंने सम्राट के समीप प्रतिज्ञा की है कि वे पचीस होशियार सैनिकों को लेकर मेवाड़के जंगलों में छिपकर आप लोगों का वध करेंगे ।

क्रोध से लाल आंख कर राजपुत्र ने खड़े होकर कहा- "यह सब समाचार तुमसे किसने कहा ?

सुनिये युवराज ! कल रात जब गरमी से बिकल होकर मैं छत में वायु सेवन कर रही थी तो देखा कि अरावली पर्वत में एक जगह उजाला हो रहा हैं। कौतूहल वश देखते २ मुझे मालूम हुआ उस उजाले में कई आदमी चल रहे है। मैंने सोचा रात को इस जंगल में शत्रुके सिवाय और कौन हो सकता है। मैं छिपकर घर से निकल कर वहाँ पहुंची। राजपुत्र कुल कामिनी समझकर मेरी अवज्ञा न करना, अबला न समझना, मैं धनुर्धारण कर इन हाथों से सैकड़ों शत्रुओं का संहार कर सकती हूं, तलवार के आघात से अनेक म्लेच्छों को भूपतित कर सकती हूं। युवराज ! शत्रुओं का वध करते करते मैं रणक्षेत्र में प्रसन्नता से मर भी सकती हूं, "

कहते कहते बालिका के नयनद्वय आभा पूर्ण हुये। राजपुत्र

आनन्द से मस्त होकर सोचने लगे निश्चय ही इस रमणी के द्वारा राजस्थान का उपकार होगा। बीरबाला दाहिना फैलाकर कहने लगी—" समीप का कोई स्थान मुझसे अपरिचित्त नहीं है। ज्ञान होने से आजतक मैं जंगलों और पर्वतों में खूब इच्छानु-कूल घूमी हूँ। अतः इस स्थान में पहुँचने में मुझे कुछ देर न लगी। छिपकर मैंने शत्रुओं की बातें सुनी। मैं थी अकेली और शत्रु थे पच्चीस। घोर उत्कंठा के साथ मैं अपने कर्त्तव्य को सोचने लगी इतने में घोड़ों की टाप सुनाई दी मुक्तिसिंह ने एक सैनिक को आज्ञा देते हुए कहा—" जाकर देखो अश्वारोही कौन है ? " सैनिक ने कुछ देर में आकर कहा—" जानपड़ता है अश्वारोही कोई योद्धा है। " वह अश्वारोही आप थे। मुक्तिसिंह की आज्ञानुसार एक अश्वारोही आपके बध के लिये चला मैंने भी उसका पीछा किया। इसके बाद जो कुछ हुआ वह राज-कुमार से छिपा नहीं है। "

राजपुत्र ने कहा—" किन शब्दों से तुम्हारी प्रशंसा करूं ? किन शब्दों से तुम्हें संतोशित करूं ? यदि साहस दो तो तुम से कुछ पूछने की इच्छा है। "

किशोरी ने नत मस्तक होकर ईषत हास्य से कहा " युव-राज ! मेरे इस प्रगल्भताजनित अपराध के दंड के लिए तो आप ऐसा नहीं कह रहे हैं ? मेरे साहस देने से आप मुझसे कुछ पूछेंगे ? देखती हूं इससे अधिक मुझे दंड देने का और कोई साधन ही नहीं है।

युवराज ने कहा—"यह क्यों ? तुम्हें मैं दंड दूंगा ? नहीं, नहीं, मैं तुमसे पूछना चाहता हूं तुम नगर की एक स्त्री हो ; शत्रु के बध में तुम्हें इतना आनन्द क्यों ? "

किशोरी कुछ क्षण मस्तक नीचा कर सोचने के बाद कहने लगी--"युवराज! शत्रु के वध से मुझे आनन्द क्यों न होगा। जो मेवाड़ के--राजपूतजाति के समस्त भारतवर्ष के शत्रु हैं वे क्या मेरे शत्रु नहीं हैं? राजपुत्र! क्या मैं मेवाड़ की, राजपूत जातिकी, भारतवर्ष की कुछ नहीं हूं? मैं पुर स्त्री हूँ, क्या अत्याचारी के आघात से मेरा हृदय विदीर्ण नहीं होता? युवराज! क्या पुरस्त्री मानव समाज की आशिनी नहीं है? क्या उसका देह रक्त-मांस से नहीं बनी है? तब उसकी प्रवृत्ति शत्रु के संहार की ओर क्यों न होगी। देखिये युवराज हमने इनका क्या बिगाड़ा है। धन-धान्य परिपूर्ण भारतने कब किसकी हानि पहुंचाई? जगन्मान्य राजपूत जाति ने उनका भी अनिष्ट किया? तब यों दुराचारीगण अनर्थकारी लोभ के वश होकर हमारे विमल सुख-सुधा में गरल मिला रहे हैं। क्यों वह हमारे सौभाग्य के मस्तक में वज्रपात कर रहे हैं? युवराज किसके अत्याचार से यह मेवाड़ जनशून्य मरुभूमि के समान हो गया? किसके दौरात्म्य से चिरसुखी राजपूत शिशु अन्नभाव से आर्तनाद कर रहे हैं? जिन के भय से भारत की देवियां अपनासतीत्व रत्न बचाने के लिये दुख भोग रही हैं? दुराचार, धर्म-ज्ञान हीन म्लेच्छ ही क्या इन सब के मूल कारण नहीं हैं? राजपूत! इस महाशत्रु के विनाश में मैं क्यों प्रसन्न न हूंगी?

अमरसिंह ने सोचा, "मेरे हृदय में भी इतनी उदरता नहीं है दो चार वर्ष बाद बड़ी होने पर यह कुमारी असाधारण शक्ति शालिनी होगी। इतना रूप इतने गुण एक साथ भी हो सकते हैं यह मुझे ज्ञान न था।। फिर प्रकाश रूप से कहने लगे-"राजपूत रमणी कुल

कमलिनी ! मैं तुम्हारी बात सुनकर प्रायः उन्मत्त हो गया हूँ ! भरोसा करता हूँ यवन-युद्ध में तुम्हें सबसे आगे देखूँगा ॥"

रमणी ने हाथ जोड़ कर कहा—"राजपुत्र का आशीर्वाद !"

"इसके बाद अब तुमसे कब भेंट होगी ?"

"भेंट—भेंट की बात फिर कभी कहूँगी ।"

"अपना नाम और परिचय देने में तुम्हें कुछ आपत्ति है ?"

रमणी ने उत्कंठित होकर कहा—"नाथद्वार में मेरा नैहर है, अधिक परिचय फिर कभी अनुकूल समय होने पर दूँगी ।"

इतने में समीप ही घोड़े की पद ध्वनि सुनाई दी । दोनों उत्सुक नेत्रों से उसी ओर देखने लगे । अमरसिंह ने कहा—

"स्वर्गीय जयमलसिंह के पुत्र मेरे प्रिय मित्र रत्नसिंह आ रहे हैं ।"

तरुणी ने व्यस्त होकर कहा—"युवराज ! मैं जाती हूँ । मुझ पगली की प्रगल्भता और अपराधों को क्षमा करना ।"

यह कहते कहते सुन्दरी चली गई । अमरसिंह उसकी ओर देखते रहे ।

## तृतीय परिच्छेद ।

### तलवार, नहीं प्रेम ?

जब रतनसिंह वहाँ पहुँचे तब तक अमरसिंह उसी वीरनारी की ओर देख रहे थे । रतनसिंह ने घोड़े से उतर कर उनके कंधे में हाथ रख कर कहा—"भाई ! युद्ध-विग्रह त्याग कर युवती के दर्शन-सुख में इतने लीन हुए हो ?"

अमरसिंह ने लज्जित भाव से कहा,—"क्या तुम्हारा ऐसा विश्वास है ? तुम जिसे युवती कहते हो वह एक बालिका मात्र

है। यहाँ पर बैठकर सुनो मैं तुमसे सब कहूँगा, सुनकर तुम चकित होओगे और निर्निमेष नयनों से उस कामिनी के परिगृहित पथ को देखते ही रहोगे या सारी रात उसकी आलोचना करते करते बिता दोगे।"

रतनसिंह ने सहास्य कहा—"कहो भी तो, सुनूँ क्या बात है।"

अमरसिंह ने आदि से अंत तक सब वृत्तांत कहा। रतनसिंह भी चकित हुए, फिर दोनों ने कुछ देर तक उस सुन्दरी के संबंध में आलोचना की किंतु कुछ भी स्थिर न कर सके।

तब रतनसिंह ने कहा—"इस जगह अधिक ठहरना ठीक नहीं! सूक्तसिंह सदा छिपकर हमारे नाश के लिये चेष्टा करते रहते है। चलो यहाँ से चलें।"

अमरसिंह ने घोड़े को खींचते हुए कहा-"तुम इस समय कहाँ से आते हो तथा कहाँ जाओगे?"

रतनसिंह ने कहा-"मैं कमलमीर से आ रहा हूं राजनगर को जाऊँगा, पूज्यपाद महाराणा की आज्ञा है राजनगर के सामंतो को हमेशा तय्यार रहना चाहिये, शीघ्र ही युद्ध की संभावना है, प्रति क्षण विपत्ति समीप है, सामन्तों के साथ इस विषय में सुव्यवस्था करने ही के लिये मै जा रहा हूं। तुम जिस काम के लिये गये थे क्या हुआ?"

"सफलता हुई"

"बहुत भरोसा हुआ"

दोनों घोड़ों पर चढ़ कर विदा हुए इतने में रतनसिंह ने कहा,-"सुनो अमर! पथ शत्रुओं से भरा हुआ है, मेरी राय में तुम अकेले न जाओ। आओ दोनों यहाँ से राजनगर चलें और फिर साथ साथ लौटें।"

अमरसिंह ने हँसकर कहा,-"जान पड़ता है तुम भयभीत हो रहे हो।"

रतनसिंह ने उत्तर न देकर अपनी तलवार दिखाई और दोनों अपने अपने स्थानों को विदा हुए।

इस समय इन दोनों युवकों को पाठकों को परिचय देने की इच्छा होती है: अमरसिंह मेवाड़ के तत्कालीन महाराणा प्रतापसिंह के पुत्र हैं। उनकी उम्र १८ वर्ष से अधिक नहीं है। इस छोटी अवस्था में ही वह योद्धृत्व, पाण्डित्य, विनय शिष्टाचार आदि सद्गुणों से सुशोभित हैं।

रतनसिंह विख्यात बेद्नोर के राजा स्वर्गीय जयमलसिंह के पुत्र हैं। जयमलसिंह के वीरत्व, स्वदेश प्रेम इत्यादि गुणों की सीमा नहीं थी। बादशाह अकबर ने स्वयम् उनकी प्रशंसा लिखी है। रतनसिंह की बहुत छोटी अवस्था में जयमल स्वर्गवासी हुए। मृत्यु-समय जयमल ने अपने पुत्र को अपने अधिनायक प्रतापसिंह के हाथों में अर्पण किया और उस पर अनुग्रह रखने का अनुरोध किया, महाराणा ने रतनसिंह को पुत्र के समान लालन पालन कर उसे शिक्षित किया।

रतन और अमर प्रायः समवयस्क थे। उनका एक साथ लालन-पालन हुआ था इस कारण उनमें परस्पर अत्यंत सौहार्द था। बहुत आदमी तो रतनसिंह को महाराना का पुत्र ही समझते थे



# चतुर्थ परिच्छेद ।

## ऐतिहासिक कथा ।

हमारी इस उपन्यास से संबंध रखनेवाली ऐतिहासिक घटना को अति संक्षेप मे रखने की इच्छा होती है। कोई कोई पाठक तो कौतूहलो दीपक उपन्यास में नीरस ऐतिहासिक विषय पढ़ने की इच्छा न करेंगे तथा लेखक को अनर्थक ग्रंथ-कलेवर वृद्धि करने के लिये लांछित करेंगे। जो कुछ हो सब असुविधा और अपमान सहकर भी हम कुछ लिखेंगे, जो कुछ हम लिखेंगे बहुत से पाठक तो उसे जानते ही होंगे। जिनको ज्ञान न हो उनसे हमारा नम्र निवेदन है स्वदेश के इतिहास को ममता से इस नीरस परिच्छेद को एक बार पढ़ लें तो कुछ हानि न होगी।

यवनों के प्रताप के आगे एक एक कर के भारत के समस्त राजा महाराणा पराजित होकर गौरव शून्य होने लगे। जब सम्राट अकबर दिल्ली के सिंहासनाधीस थे उस समय हिन्दुओं के भरोसा स्वरूप अधिकांश राजपूत राजगणों ने क्रमश मुगलों को आश्रय ग्रहण कर आधीनता स्वीकार की। किसी ने विवाह-बाधा से, किसी ने संधि-सूत्र से, किसी ने अनुग्रह-पाश से बद्ध हो कर यवनों के अत्याचार से अपना पीछा छुड़ाया। जिन्हों ने इस प्रकार अपने अतीत गौरव को पुंज कर बलवान का आश्रय ग्रहण कर अपने धन प्राण की रक्षा की उनमें से अम्बर देशाधिपति महाराणा मानसिंह बीकानेर के कुमार पृथ्वीराज और मेवाड़ के सूक्तसिंह से इस उपन्यास का कुछ संबंध है। राजपूत श्रेष्ट मेवाड़ेश्वर ने कभी भूलकर भी यवन की दासता स्वीकार नहीं की। राज्य चली जावे, धन संपत्ति जावे, प्राण भी जावे किन्तु

सूर्यास्त
काले (गु २७) ८७

किसी की दासता स्वीकार कर पवित्र इक्ष्वाकु वंश संभूत राजपूत कुल में कलंक न लगा देंगे; बप्पा राव के वीर्यवंत तेजस्वी वंशधरों का यह गौरव था। इसी गौरव के लिये उन्होंने अपरिमित क्लेश सहन किये, अपनी रक्तधारा बहाकर समरक्षेत्र का सिंचन किया किंतु कभी न वे अपनी प्रतिज्ञा से विचलित हुए न उनके विचारही परिवर्त्तित हुए।

मेवाड़ेश्वर राना उदयसिंह के समय चित्तौड अकबर के हस्तगत हुआ। चित्तोड की रक्षा के लिये राजपूत वीर और वीर ललनाओं ने युद्ध में जो असाधारण शौरत्व और स्वदेशानुराग दिखाया उसकी तुलना के लिये अन्य पद्दुला है और जातियों की इतिहास में कुछ नहीं है, हमारा पाठकों से अनुरोध है व तत्कालीन इतिहास का अवश्य अध्ययन करें। उदयसिंह सुदक्ष नृपति न थे। आलस्य, शिथिलता और भोगसुख की उन्मत्तता ने उनके चरित्र को कलंकित किया। इसी कारण उनके समय में धन-जन-सहाय शून्य अधःपतित मेवाड का पूर्ण पतन हुआ!

उदयसिंह ने राजधानी गँवाकर राजपिप्पली नामक स्थान के दुर्ग में आश्रय ग्रहण किया। चित्तोड़ नष्ट होने के पूर्व उन्होंने गौरव नामक पहाड़ की उपत्यका के समीप 'उदयसागर' नामक एक तालाब खुदवाया, और उसी के नजदीक एक क्षुद्र हर्म्य निर्माण कर उसको चारों ओर बहुत ऊँची दीवार से घेर दिया। शीघ्र ही वहाँ पर धनवान प्रजावर्ग भी आकर बस गये। इस प्रकार सुविख्यात उदयपुर की सृष्टि हुई।

संवत् १६२८ में उदयसिंह की जीवन लीला समाप्त हुई। प्रतापसिंह उस राज्य शून्य, सम्पत्ति शून्य, शान्ति राजोपाधि के उत्तराधिकारी हुए। प्रतापसिंह जन-धन शून्य सिंहासन में उप-

विद्ध हुए किन्तु क्षण मात्र के लिये भी उनका हृदय शून्य न हुआ। भारतवर्ष में फिर हिन्दूराज्य संस्थापित होगा, चित्तौड़ नगर में फिर सूर्य वंश की जयध्वजा फहरायगी, इसी आशा से उन्मत्त होकर बराबर प्रताप ने अपनी जीवन की नौका दारुण विपद्-संकुल सागर में छोड़ दी।

प्रतापसिंह के हृदय के अत्युच्च भावों को लिपिबद्ध करना असाध्य है। उनका अनुमान करना ही कठिन है, प्रकाश करना तो सर्वथा असंभव है। प्रताप के हृदयमें चित्तौण का कितनी ममता थी! वे चित्तौण की दशा सोच सोच कर एकान्त में अविराम अश्रुधारा बहाते थे। अकबर ने चित्तौण पर अधिकार जमा कर उसकी निरुपम शोभा का ध्वंस कर दिया था। चारणों ने चित्तौण की उस दशा की उपमा आभरण हीना दुःखिनी विधवा नारी से दी है। प्रतापसिंह ने चितौड़ की दुर्दशा से दुःखी होकर यह नियम बनाया था कि जब तक चितौड़ का पुनरोदय न होगा तब तक उनके उत्तराधिकारी समस्त भोगविलासकी सामग्री से वंचित रहेंगे। वे और उनके स्वजनवर्ग स्वर्ण-रौप्य निर्मित भोजनपात्रों के स्थान में वृक्ष के पत्तों में भोजन करते थे, सुकोमल शय्या के स्थान में तृणशय्या में शयन करते थे, मृताशौच के समान नख और केश रखते थे तथा आनन्द उत्सव में जो नगाड़े सब से आगे बजाये जाते थे वे, उस निरानन्द घटना को सदा स्मृति के सन्मुख रखने के उद्देश्य से, पीछे रक्खे गये। चित्तौड़ का पुनरभ्युदय विधाता की इच्छा न थी—न हुआ। किंतु आज भी प्रताप के वंशधर गण उनकी आज्ञा नहीं भूले हैं। वे आज भी भोजनपात्रों के नीचे सदा पत्ते रखते हैं शय्या के नीचे तृण बिछाते

हैं, कभी पूर्ण रूप में मुंडन नहीं कराते तथा नगाड़े इत्यादि आज भी सब से पीछे बजाये जाते हैं।

प्रतापने उस जन धन शून्य सिंहासन का अधिकारी होकर देखा शत्रु का प्रबल प्रताप दलित कर अभ्युदय का कोई आशा नहीं था। धन धान्य परिपूर्ण और प्रकृति का प्रिय निकेतन होने के कारण ही मेवाड़ने मुगलों के हृदय में अत्यन्त लोभ पैदा किया था अतएव इस समय और कोई चेष्टा न कर मेवाड़ को श्मशान बना देना चाहिये। इसके लिये उन्होंने आज्ञा दी का प्रजागण अ ज से सम्पन्न भूमि में, नगर या ग्राम में बसने न पावें; सबको वास स्थान छोड़ कर जंगलों और पर्वतों में रहना होगा। प्रताप की आज्ञा को कौन न मानता समस्त प्रजा अपना अपना पुत्र परिवार लेकर सघन वनों में तथा भयंकर गिरि गह्वरों में बस गई. सोने का मेवाड़ जन हीन, शब्द हीन, श्री हीन और परित्यक्त होगया. सारा मेवाड़ शार्दूल शृगाल और सर्पों का निवासस्थान हो गया। शोभामय भवन श्रीहत, पतनोन्मुख आनन्दशून्य और दीन हीन हो गये, । मेवाड़ की जो दशा हो गई उस से विरोधी राजाओं की आंखों में लोभ की कुछ भी सामग्री न रही। जो मेवाड़ के प्रदेशपति थे तथा जिनका निवास दुर्गों में था सिर्फ उनको ही इस कठोर नियम को कभी कभी तोड़ने का आज्ञा थी। वे समस्त दिन दुर्ग में रहते थे और रात को विशेष प्रयोजन से बाहर आने की आज्ञा लेते थे। उनकी संख्या बहुत थोड़ी थी वे भी दिन में कहीं भ्रमण को न जाने पाते थे। इस कारण मेवाड़ के प्रत्येक नगर में प्रत्येक ग्राम

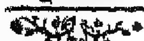
में. द्वार द्वार मे कठिन प्रयास करने से भी मानव-कंठ ध्वनि नहीं सुनाई देती थी।

स्वयं प्रताप सिंह अपने स्त्रीपुत्र को साथ लेकर भयंकर वन में वृक्ष के नीचे रहते थे। उनके असंख्य दुःख का वर्णन कैसे करें। उनके उस यातना पूर्ण राजपद से पथ के भिखारी की दशा अच्छी थी। युवराज अमरसिंह उस समय बालक ही थे।

इस प्रकार पांच वर्ष बीत गये पर राज्य की कुछ भी उन्नति न हुई। महाराजा ने देखा इस प्रकार विपिन वास करने से यवनो के आक्रमण से रक्षा तो हो सकता है किंतु मेवाड़ के सौभाग्य—सूर्य का पुनरभ्युदय नहीं होसकता। बलविक्रम स्वाधीनता और प्रभाव की उन्नति के साथ ही अभ्युदय होगा।

वन में रहने से यह कैसे होगा। राजधानी में युद्ध के लिये सदा तय्यार रहना आवश्यक है अत एव उन्होंने कमलमीर नामक दुर्गसम्पन्न नगर को फिर बसाया और स्वजनो सहित वहां राजधानी स्थापित की।

जिन कई प्रधान व्यक्तियो की महाराजा में अविचल श्रद्धा थी जिन्होंने उनकी उन्नति और अवनति में अपनी उन्नति समझी थी उनमें कुमार अमरसिंह और कुमार रत्नसिंह को छोड़ तीन आदमी विशेष प्रशंसा-पात्र थे। वे तीन आदमी शैलम्बरराय देवलवरराय और झालाराय थे। शैलम्बर राय प्रताप सिंह के समवयस्क थे। उनदोनो का हृदय कर्त्तव्य सूत्र के सिवा आत्मीयता के सूत्र में भी ग्रथित था। देव-लवरराज वृद्ध थे उनके धवल श्मश्रु और धीर कार्य्य उनके ज्ञान अनुभव के साक्षी थे। मेवाड़ की जब कुदशा हुई उस समय उन्होंने धनप्राण रक्षार्थ यवन की अधीनता स्वीकार



करली थी। किंतु जिसके हृदय में तेज का अंकुर है वह अधीनता कब तक स्वीकार करेगा। धनधान्य जावे तथापि मेवाड़ की रक्षा करना निश्चय कर देवलवरराज ने महाराजा प्रतापसिंह के पास आकर सविनय अपनी त्रुटि स्वीकार की और उनका पक्ष ग्रहण किया। यद्यपि झालाराज हमेशा महाराजा के समीप न रहे तथापि आवश्यकता होने पर वे महाराजा के लिये प्राण स्वर्ग करना कुछ न समझते थे। इनके सिवा और एक व्यक्ति हमेशा महाराजा को परामर्श देने में संलग्न रहते थे। वे उनके मंत्री थे उनका नाम भवानीसहाय ( भामाशाह ) था। उसकी आकृति कुत्सित थी किन्तु जगदीश्वर ने उन को वह उदार हृदय दिया था जिसे लेकर मनुष्यत्व प्राप्त करना बहुत कम मनुष्यों के सौभाग्य में होता है। महाराजा की भक्ति और उनके वंश का कल्याणकर कार्य करने ही उसके प्रियकार्य थे अन्यथा मुख्य कार्य होने पर भी वे असिधारण की क्रिया को खूब जानते थे।

प्रताप के राज्य लाभ करने के पाँच वर्ष बाद से हमारा उपन्यास आरम्भ होता है।

# पंचम परिच्छेद।

## चारण

महाराणा प्रतापसिंह, शैलम्बराज और मंत्री भवानीसहाय कमलनीर दुर्ग में बैठे हैं। संध्या होने में अभी कुछ देर है। दूर उदयपुर के महलों में और मंदिर ध्वजाओं में सूर्य किरण चमक रही है। घन कृष्ण मेघमाला के समान अरावली पर्वत चारों ओर से मस्तक ऊंचा कर मानो जगत का नाति

को अवलोकन कर रहा है मेवाड़ की अतीत घटनाओं की साक्षी दे रहा है। उससे बढ़ कर राज स्थान की चंचल अदृष्ट लिपि की साक्षी और कौन दे सकेगा? अरावली के हृदय में राजस्थान की कितनी ही उन्माद-कहानियाँ अंकित हैं। राजस्थान के शोणित बिन्दु से अरावली का एक एक कण सिंचित है, अरावली ने हमेशा अपना हृदय खोल कर राजस्थान के प्रधान वीरों का पदचिन्ह धारण किया है, अरावली की प्रत्येक गुहा में प्रत्येक कंदरा में, राजस्थान की वीर--कीर्ति का निदर्शन है, अरावली राजस्थान के सौभाग्य--दुर्भाग्य का, सुख-दुख का सजीव साक्षी है।

महाराना और उनके बंधु गण बैठे बैठे कर्त्तव्य चिंता कर रहे थे। सहसा कुछ सोचकर महाराना टहलने लगे, उनकी दृष्टि बहुत दूर स्थित छायावत चित्तौड़ के अभ्रचूड़ देवमंदिरों, अभ्रस्पर्श प्रासादों इत्यादि में पड़ी। उन्होंने विकल होकर देखा मानो विग-लित कुंतला, श्रीहीना, भवानी कल्याणी देवी भग्नमंदिर में खड़ी खड़ी रो रही है। बहुत देर इस प्रकार देखते देखते प्रताप की आंखों की आँसू उमड़ आये। उन्होंने वहाँ से दृष्टि हटाली। इतने में एक नौकर ने आकर कहा--"अन्ताल नगर के चारण श्रीमान की नीचे प्रतीक्षा करते हैं।"

महाराना ने कहा--"उनको यहां ले आओ"

देवीसिंह आये। महाराना इत्यादि ने उन्हें सादर स्थान दिया, देवीसिंह ने भी क्रमशः महाराना और उनके अनुचर वर्ग के प्रति सम्मान प्रकाश किया।

देवीसिंह की आयु साठ के ऊपर होगी। उनके विशाल मस्तक में सफेद पगड़ी शोभित है, वदन दाढ़ी विहीन है दोनों ओर से



विस्तार मूँछें निर्मल और श्वेत हैं । भूओर आंखों के तमाम बाल श्वेत हैं । उनकी स्थूल देह सफेद वस्त्र धारण किये हुये हैं । पृष्ठ में एक तलवार और एक किरीच शोभायमान है। देवीसिंह की देह उन्नत, वदन चिंतायुक्त और मूर्त्ति गंभीर है। वयोवृद्धि की शिथि-लता का उनके ऊपर कुछ भी प्रभाव नहीं है। देवीसिंह ने महा-राणा से पूछा -' इस समय आपने क्या स्थिर किया है। "

प्रतापसिंह ने कहा-" जितना शीघ्र संभव हो युद्ध करूगा । "

देवीसिंह—उत्तम ।

भवानी सहाय ने कहा—" किन्तु किस भरोसे से हमारे पास क्या है ? "

वृद्ध देवीसिंह की आंख लाल हो गई उन्होंने कहा " किसको क्या था ? हमारे हम तो हैं। यदि कुछ नहीं कर सकते हो तो इस प्रकार के कलंकित जीवन से मरने में कौन हानि है ? "

महाराना ने कहा -" ऐसा जीवन ! भवानी सहाय जानते हैं मैंने आजतक यह कलङ्क क्यों लिया- हाय ! धिक्कार !

देवीसिंह—तेज उद्यम और भरोसा पूर्वक यत्न करने से क्या न होगा। "

महाराना ने कहा-" देव ! मेरा हृदय तेज, उद्यम और भरोसे से शून्य नहीं है । मैं आज भी देखता हूं चित्तौड़ के भग्न-चूड मन्दिर मस्तक से मानो श्रीहीना बाल बिखराये हुए कल्याणी देवी मुझे अभय देकर कह रही हैं -" वत्स ! मेवाड़ का पुनः उद्धार तुम से ही होगा। मरूं चाहे जिऊं मैं देखूंगा मेवाड़ रहता है या नहीं। "

बेदबार राज ने कहा—' यदि आपके द्वारा चित्तौड़ का उद्धार न होगा तो फिर कुछ आशा नहीं है। देवीसिंह की आंखें

फिर प्रादिप्त हुई, उन्होंने कहा—" मनुष्य का कार्य मनुष्य कैसे न कर सकेगा ? मेवाड़ की वर्तमान अवस्था अत्यंतहीन होने पर भी आशा बहुत है। इस प्रकार के घोर अंधकार में मेवाड़ बारबार आच्छन्न हुआ और फिर सुखसूर्य के उदय से अलोकित हुआ। इस बार भी वैसा क्यों न होगा ? यदि वैसा न हो तो स्वयम् हम ही निन्दनीय हैं। पूर्व समय में जो मान हृदय लेकर राजपूत गण जगत्पूज्य थे आज हमारा वह हृदय नहीं, वह उद्यम नहीं, वह अदम्य स्पृहा नहीं, वह उच्च आशा नहीं, इसीलिये आज हमारी इतनी हीनता, इतनी दुर्दशा तथा इतना अपमान है।"

कहते कहते वृद्ध की आंखे लाल हो गई। वे उठकर खड़े हुए और उन्मत्त भाव से कहने लगे—

"कहां गये वह गौरव के दिन कहां गया वह भारतवर्ष।
कहां गई वह शुचि स्वतंत्रता कहां गया वह परमोत्कर्ष॥"
हाय हाय क्या देख रहे हैं रानी कंगालिन के वेश।
मलीन वसना, भूषण हीना, शीर्णकाय, जीवन्मृत शेष॥
क्या गावे क्या गाने को है लूट लियो तन, मन, धनमान,
नंदन भारत बना दिया है किसने आज मसान समान ?
यह चित्तौड़ हुआ है सब विध भाग्यहीन श्रीहीन भवान,
रोदन रत विधवा नारी सम हाय हुआ है सब विधिहीन॥
शुचि अतीत की सुन्दर स्मृति से रोते हैं यह आकुल प्राण
आओ सब मिल डूब मरें सागर में या करलें विषपान॥

महाराना उस बढ़ते हुए शोक प्रवाह को शांत करने के लिये छाती को दोनों हाथों से दबा कर परिक्रमण करने लगे, चारण वृद्धसिंह संक्षुब्ध स्वर से हाथ नचा २ कर पूर्व पुरुषों की कीर्ति गाने लगा—

पृथ्वीसिंह

" सूर्यवंश इक्ष्वाकु जगत में कीरति छाई ।
प्रगटे पूरन ब्रह्म राम रावनहिं नसाई ॥
तिनके लवकुश भये शत्रु हनि कीरति थापी ।
बापा तिनके वंश जासु भय पृथ्वी कांपी ॥
जिननें जंगल मांहि आइ चित्तौरहि छीन्यो ।
मोरि वंश पर मार मारि मेवारहिं लीन्यो ॥
हिंदूपति हिंदूकुल सूरज नाम धारि कै ।
हिन्दु-जस की ध्वजा उड़ाई गगन फारि कै ॥
तबहुँ भये खुमान पराक्रम जग में छायो ।
काबुल लौं करि विजय मुहम्मद कैद बनायो ॥
समरसिंह भए समर-सिंह भारत-रणजारे ।
पृथ्वीराज सग यवन जूझि सुरपुरी सिधारे ॥
कर्मदेवि पति राज्य पुत्र सह रक्षन कीनो ।
कुतुबुद्दिनहिं हराइ यवन मसि टीका दीनो ॥
करणसिंह तब यथा समय निज राज सँभार्यो
ता सुत रावल महप तिनहिं झालोरि मार्यो ॥
रहप सिंह झालोर मारि निज राजहि थाप्यो ।
रावल नामहि पलटि महाराणा जस छाप्यो ॥
रतनसेन या वंश आप संभ्रमहि बढ़ायो ।
अलाउद्दीन के दाँत तोड़ि निज धर्म बचायो ॥
ग्यारह पुत्र कटाइ बारह अजय बचायो ।
ठानि जहर व्रत नारिधर्म कुल धर्म राखयो ॥
अजय सिंह करि विजय केलवाड़ा बस कीनो ।
मुंज अचानक अजय सीस में घाव जु दीनो ॥
सोइ जो काटे मुंजसीस युवराज हमारो ।

सूर

तब पुत्रन प्रति यह आज्ञा महाराज प्रचारें ॥
निज पितृशत्रु हराइ मुंज सिर हम्मिर काटें ।
बैठे तब हम्मीर केलवाड़ा के पाटें ॥
मुहमद्दशा कारि कैद चितौरहि फेरि बसायो ।
यवन दर्प हारि आर्य ध्वजा आकाश उड़ायो ॥
प्रबल पराक्रम खेतसिंह जब गादी पायो ।
यवन मारि अजमेर जीत निज राज मिलायो ॥
जहाजपुर दक्षिण लौं जय करि राज बढ़ायो ।
यवनसीस पग धारि बैर अपनो पलटायो ॥
लक्खो राणासीन राज लक्ष्मी तब आई ।।
लक्ष्मी चारों ओर मनहुं छाई छितराई ।
किये पहाड़ी अन्न आप बस रत्नखानि सह ।
सोना चाँदी रत्न अमोलक जड़े महल महँ ॥
किले महल बहु बने राज थी चहुँ दिसि राजें
फाके शत्रुहिं किये अटल सिर छत्र बिराजें ॥
प्रबल पराक्रम साथ पौत्र कुंभा जब बैठे ।
शत्रु हृदय दलमले क्रूर कायर घर पैठे ॥
कविकुल मुकुट कहाइ नाम थिर जग में थापे ।
विजय कियो गुजरात यवन हिय भयसों कांपे ॥
याही कुल मीरा रानी जग कीरति छाई ।
गिरधरलाल रिझाइ बहुत बिधि लाड़ लड़ाई ।
राणा सांगा कीरति जग में को नहिं जानै ।
जाके असि को तेज शत्रु हिय सहजहि मानै ।
बाबर को बावरो कियो रण स्वाद चखाई ।
कितेक राजा रावल रावत सिरहिं नवाई ॥

रत्नसिंह मेवाड़ रत्न निःशंक सदाई।
पुर के फाटक रात दिवस राखे खुलवाई॥
निज भुजबल नहिं कुसल दिये यवनन रजधानी।
जिनके जस की सदा जगत में चली कहानी॥
विगत निसा भए उदय भानु खल लंपट लाजे।
चहुँ दिसि छयो प्रतापसिंह लखि गीदड़ भाजे॥
अब सोचन की बात कौन है सूर धीर मन।
उठो, उठो, कटि कसो याद करि निज पवित्र पन।
जिनके नायक खुद प्रताप तिनको का संसय।
जिनकी टेढ़ी भृकुटी लखि भाजत जग के भय॥
जब लौं जीवन देह तबहिं लौं जग के झंझट।
आपु मुए जग परलय तासों सुनहु महाभट॥
जब लौं घट में प्रान न तब लौं छूअन दीजै।
यवन सैन मेवारहिं लखि लखि हाथनि मीजै॥
पिंजर-बद्ध विहंगम से परबस जीवन धिक।
जब लौं जीवन रहै दुःख नहिं होइ मानसिक॥
अब बिलम्ब को काज नहीं असि बेगि उठावहु।
निज प्रताप अब हे प्रताप! अरिगनहि दिखावहु॥
कोउ काज जग कठिन नहीं जो दृढ़ ब्रत धारो।
ताते हे नर-केसरि! तुत रन घोष प्रचारो॥
आगो पाछो त्यागि होहु सब एक प्रेम मय।
यह निश्चय जिय धरो धर्म जित जय तित निश्चय॥

चारण देवी सिंह स्तब्ध हुए। पूर्व पुरुषों की कीर्तिगाथा [सुन]
कर महाराना प्रतापसिंह का मुखमंडल आभा परिपूर्ण हुआ। [उन्हों]
ने भीषण प्रतिज्ञा की।

" जब लौं तन में प्राण न तबलौं टेकहिं छोड़ों।
स्वाधीनता बचाइ दासता शृंखल तोड़ों॥
जो निज कुल मरजाद सहित जीवन तौ जीवन।
नाहिं ताते शत गुनित मरन रन में अस पावन॥
जो पै निज शत्रुहिं मारिके यह परतिज्ञा राखिहौं।
तौ या सिंहासन पै बहुरि पग धारन अभिलाखिहौं॥"

सरदारों ने " जय महाराना प्रताप की " कहकर आकाश प्रतिध्वनित कर दिया।

# षष्ठ परिच्छेद।

## तुम वही हो।

कभी कभी दो एक घटनाएँ चित्त के ऊपर इतना प्रभाव जमाती हैं कि वे किसी प्रकार भूली ही नहीं जाती। वे इस प्रकार हृदय से मिल जाती हैं कि उनकी छाया बिलकुल ही नहीं की जा सकती; शयन में, स्वप्न में, स्मृति में वही घटनाएँ नाना रूप धारण कर सम्मुख आ जाती हैं। नाथद्वार नगर के समीप बुनास नदी-तीर की उस वीरमदोन्मत्ता किशोरी की निरुपम माधुरी और उसके हृदय की प्रशस्तता ने अमरसिंह के हृदय पर ऐसा अधिकार जमाया कि वे उस घटना को एक क्षण के लिये भी कभी न भूल सके। चाहे वे पिता के समीप हों या माता के पास, शत्रु की बधन चिंता में हों, या एकान्त में प्रत्येक अवसर उसी भुवनमोहिनी का आश्चर्य साहस, सीमाहीन स्वदेशानुराग और असामान्य सौन्दर्य सजीव चित्र की भांति आँखों के सामने दिखाई देता था। किंतु इससे क्या कभी अमरसिंह



स्वदेश-चिंता में उदासीन हुए युद्ध अवश्यम्भावी था उसके लिये हर समय सतर्कता आवश्यक था--यह सिसौदिया वंशावतंस महाराणा प्रतापसिंह के पुत्र भली प्रकार जानते थे। क्या दिन क्या रात हर समय युद्ध की तैय्यारी में ही लगे रहते थे।

रात्रिका पहला प्रहर है। ज्योत्स्ना मयी रजनी विश्व में अवतीर्ण हो गई है। बहुत दूर कृष्ण प्रस्तर निर्मित गोगुण्डा दुर्ग आकाश तक अपना मस्तक ऊँचा किये हुए है, चंद्रालोक में दुर्ग अरावली की एक शरण विशेष--सा दिखाई दे रहा है. ऐसे समय युवराज अमरसिंह घोड़े पर चढ़े गोगुण्डा दुर्ग की ओर आ रहे हैं। अभी दो कोस और जाना है, घोड़ा वेग गति से जा रहा है। हठात् समीप के वन से एक विकट चीत्कार सुनाई दी अमरसिंह ने चारों ओर देखा किंतु कुछ भी न दिखाई दिया। कारण जानने के लिये अमरसिंह को आगे बढ़ने की इच्छा न हुई। इतने में पीछे से शब्द सुनाई दिया —"आज और निस्तार नहीं है, यदि जीवन की इच्छा है, तो बादशाह का दासत्व स्वीकार कर।"

अमरसिंह ने घोड़ा फिराने पर देखा चार मुसलमान उनका लक्ष्य कर तीर छोड़ रहे हैं। उनके लक्ष्य व्यर्थ हुए, अमरसिंह ने शीघ्र ही अपनी तलवार से समीप के यवन को आहत किया, वह चीत्कार छोड़ता हुआ घोड़े से गिर पड़ा। शेष तीन यवनों ने तलवारों से अमर पर आक्रमण किया; अमरसिंह ने किसी के ऊपर आक्रमण करने का अवसर नहीं पाया केवल आत्म रक्षाही करते रहे। यवनों ने मनही मन उनके कौशल की खूब प्रशंसा की। इस प्रकार कार्य सिद्धि न देख यवन एक बार, उनसे बहुत दूर चले गये। अमरसिंह ने मौका पाकर एक तीर छोड़ा।

उसने एक यवन का हाथ विद्ध किया और वह आगे न बढ़ सका। अब शेष दोनों ने शीघ्र आकर एक साथ आगे और पीछे से अमर के ऊपर आक्रमण किया, पर वे अद्भुत कौशल से उनके आघातों से अपने को बचाने लगे। अमरसिंह ने अत्यंत कातर होकर सोचा बिना कुछ दूर हटे जय की आशा नहीं है। संकेत मात्र से घोड़ा बीस हाथ दूर जाकर खड़ा हुआ अमर ने उस समय तीरों की वर्षा की। एक तीर से पहले जिसका हस्त छिन्न हुआ था इस बार उसका मुंड छिन्न हुआ और उसने पंचत्व प्राप्ति की। अब केवल दोही शत्रु शेष रह गये थे, उनमें से एक द्रुतगति से आकर अमर से युद्ध करने लगा दूसरा दूर खड़ा रहा, वह महाबत खाँ था। लगातार तलवार चलाने से अमर बहुत थक गये थे किन्तु फिर विश्वमयी भवानी के चरणों का ध्यान कर वे उत्साह सहित युद्ध करने लगे। इस समय महाबत खाँ छिपकर अमरसिंहका वध करने को पीछे से आया। उस समय जगनारायण देव माता की देव वाणी के समान, मृत-संजीवनी मन्त्र के समान, कूलहीन सिन्धु-निमग्न व्यक्ति के आश्रय के समान दूर से शब्द हुआ "सावधान! राज-पुत्र, फिरकर देखो!"

तत्क्षण अमर ने फिर कर देखा-जीवन की आशा कहाँ, शत्रु ने तलवार खींच रक्खा था। उस समय दोनों अमर के ऊपर आक्रमण करने लगे। सहसा एक मुसलमान चीत्कार छोड़ घोड़े से गिर कर मर गया। अमर ने विस्मित होकर सोचा "इसे किसने मारा?" अब केवल महाबत जीता रहा उसने अब युद्ध करना उचित न समझ कर घोड़ा फिराया और लौट चलो। अमर ने भी तीरों की वर्षा कर उसका पीछा किया। महाबत खाँ

भागते हुए उनसे कहा-'फिर जाओ, तुमने आज जिस युद्ध में विजय पायी वह बड़े २ वीरों को भी श्लाध्य है ! किन्तु अमर ! यह न सोचना ऐसा सौभाग्य सदा प्राप्त होगा । यवनो का दासत्व तुम्हारे भाग्य में विधाता ने लिखा है । आज नहीं तो कल अवश्य ही तुम उनके अधीन हो जाओगे । ”

अमर ने कहा-“एक बार अकबर से स्वयं आने को कहना मैं उन्हें इस 'विधाता के लिखे हुए' दासत्व का अर्थ समझा दूंगा । ”

अमर का घोड़ा थक गया था इस कारण वे महावत खाँ को न पा सके । निराश होकर उन्होंने महावत का पीछा छोड कर अपना घोड़ा फिराया उस समय महावत सघन वन के बीच अदृश्य हो गया था श्रान्ति दूर करने को अमर ने घोड़े से उतर कर कहीं पर विश्राम करना निश्चय किया । हठात् उन्होंने देखा बर्छी धारिणी ज्योतिक विश्वविजिती भुवन मोहिनी प्रतिमा खड़ी है । चन्द्रालोक में उन्होंने रमणी का शशिवदन देख कर कहा-“ तुम वही हो ? ”

किशोरी ने सन्मान सहित अमरसिंह को प्रणाम किया । अमर ने फिर कहा -“ अब समझा आज तुम्हारी ही दया से मेरे प्राणों की रक्षा हुई है, तुम्हारे ही बर्छे से उस यवन का प्राणान्त हुआ । तुम्हारा ऋण इस जन्म में न चुका सकूंगा ।

सुन्दरी ने कहा -“ यह कौनसी बात है--मैंने क्या किया ? युवराज !—”

युवराज ने कहा—“ तुमसे फिर मिलने की आशा से नितान्त व्याकुल था । तुम्हारे गुणों को कभी न भूल सकूंगा ? ”

किशोरी ने लज्जा से मुख नीचा किया । अमर ने कहा-“ तुम आज यहाँ कैसे आई ? ”

सुन्दरी ने हँस कर पूछा- " मैं कहां नहीं रहती हूं ? आप इस "समय कहां जाओगे ? "

अमरसिंह-मैं गोगुन्दा दुर्ग को जाऊंगा।

किशोरी-आप थके हैं तनिक विश्राम कर दुर्ग को जाइये।" यह कह सुन्दरी जाने लगी अमरसिंह ने निराशा के स्वर में कहा इसी समय जाओगी" हृदय में कितनी ही बातें तुमसे पूछने को साक्षित हैं। जिसके निकट इस जीवन में इतने आनवरों से बद्ध हूं इसके साथ नितान्त अपरिचित की तरह साक्षात करने से मन की तृप्ति नहीं होता।"

जब अमरसिंह उससे बात करने जाते थे सुन्दरी अतृप्त आँखों से उनकी ओर निहारती जाती थी। मन समाप्त कर अमर ने उसकी ओर देखा, दोनों की आंखें चार हुई। सुन्दरी ने लजा कर आंखें नीची करली। अमरसिंह ने फिर कहा " तुम्हारे साथ शायद अब शीघ्र भेंट न होगी।"

सुन्दरी ने बर्छे की नोक से मिट्टी खोदते हुए कहा " इस अधीरा के ऊपर कुमार का असामान्य अनुग्रह है। यह मेरा परम सौभाग्य है। किन्तु शायद " कुछ रुककर कुमारी ने बात बदल कर कहा-" रात्रि अधिक होगई है, अब मैं जाऊंगी "

युवराज ने कहा-" कौन जाने, अब तुम्हारे साथ कब भेंट होगी ? "

सुन्दरी ने उत्तर दिया-" भेंट के लिये तो नित्य प्रार्थना है। किन्तु युवराज कुलकामना-"

राजपुत्र ने कहा-" पथ शत्रु समाच्छन्न है, इसलिये चलो मैं तुम्हें पहुंचा दूंगा।

" मैं दूसरी ओर जाऊँगी। "

" दुर्ग को न जाकर मै भी तुम्हारे साथ उसी ओर चलूंगा " किशोरी ने अवनत मस्तक होकर कुछ क्षण विचार कर कहा " आपके आशीर्वाद से कुमारी ऊर्म्मिला कभी भयभीता नहीं हो सकती । "

धीरे धीरे ऊर्म्मिला अमर के निकट से जाने लगी। शीघ्र ही नेत्रपथ से अदृश्य भी हो गई। अमरसिंह बहुत देर तक मंत्र मुग्ध के सदृश उसकी ओर देखते रहे, फिर ऊँचे विस्फारित नयन कर कहने लगे-" कुमारी ऊर्म्मिला कुमारी ऊर्म्मिला सचमुच में तुम मानवी नहीं देवी हो ! "

उस गंभीर रजनी में उस जनशून्य अरण्य पथ से अमर घोड़े पर चढ़कर अकेले चले। वाह्य प्रकृति का उस समय उनके हृदय में कुछ भी प्रभाव न था। संसार, युद्ध, यवन, धर्म, स्वदेश आदि सब को वे उस समय भूल गये। उस समय एक ही चिंता उनके हृदय में थी वह चिंता थी ऊर्म्मिला की उस दिन से अमर सिंह के हृदय में एक भावपूर्ण वेग संचालित हुआ। उस दिन अमरसिंह की अपने चित्त के ऊपर की प्रभुता जाती रही।

## सप्तम परिच्छेद ।

### युवक—युवती ।

दो पहर का समय था। प्रचण्ड आग के बरसाने वाली रविकिरणों से पृथ्वी जल रही थी। इस समय कुमार रतनसिंह देवलवर नगर के राजद्वार में जाकर उपस्थित हुए। पिछले पांच वर्षों से महाराना या उनके अधीन गणों ने देवलवर राज से कुछ संबंध नहीं रक्खा था। कई कारणों से महाराना वृद्ध देवलवर राज से विरक्त थे, किंतु अब यह मनोमालिन्य दूर

हो गया है अब महाराना ने सदय होकर उनको सहचर स्वरूप ग्रहण किया है अब वे किसी के भी विराग भाजन नहीं हैं, महाराना के रुष्ट होने के पहले रतनसिंह कभी देवलवर जाते थे, किंतु इधर पांच वर्षों से किसका साहस था वो मैं उपस्थि होकर द्वारपाल से पूछा–" महाराज कहां हैं ? "

द्वारपाल ने सविनय कहा–" वे इधर तीन दिन से नहीं हैं, कहां हैं यह मुझे ज्ञात नहीं । "

कुमार ने कहा–" उनकी आज आने की खबर थी । क्यों नहीं आये, समझ में नहीं आता । ,

कुछ देर सोच कर कुमार ने फिर कहा–"मैं कुछ देर के लिये यहां विश्राम करूंगा ।"

द्वारपाल ने कहा–"अनुग्रह पूर्वक मेरे साथ चलिये ।"

कुमार रतनसिंह ने भवन में प्रवेश किया, देवलवर राय का प्रधान कर्मचारी उनको परम आदर के साथ एक प्रकोष्ठ में ले गया । वहां एक तृणाच्छादित शय्या थी, रतनसिंह उसके ऊपर बैठ गये । दो सेवक आकर पंखा झलने लगे क्रमशः कुमार उस तृणशय्या पर सो गये । जब कुमार की नींद टूटी उन्होंने देखा, संध्या प्राय उपस्थित है । अधिक देर तक वहाँ रहना ठीक न समझ कर कुमार हाथ मुँह धो चलने लगे । इस समय एक दासी ने आकर कहा,- "कुमारी यमुना देवी ने कहला भेजा है, पिता देवलवर राज कार्य वश यहाँ नहीं है ।, आपके आने में उनका भवन पवित्र हुआ है किन्तु आपकी समुचित अभ्यर्थना वे न कर सके । उनकी नम्र प्रार्थना है कि आप अनुग्रह कर सब त्रुटियों को क्षमा करेंगे । ,

कुमार ने पूछा--"कुमारी जमुना अब कैसी है ?"

"अच्छी है"

"कुमारी के सौजन्य से मैं संतुष्ट हुआ, हमारी आजकल कैसी अवस्था है यह देवलवर राज तनया को ज्ञात ही होगी। आज इसी के लिये मैं उनके पास से विदा मांगता हूं।"

दासी चली गई तथा थोड़ी देर में फिर आकर कहने लगी,-"युवराज इस समय संध्या निकट है, अतः अंधकार और रात्रि में जाना कष्टकारी होगा। कुमारी की प्रार्थना है कि अपने पदार्पण से आपने जिनको परमानन्दित किया है आतिथ्य ग्रहण कर उन्हें पवित्र करें।"

कुमार ने कुछ क्षण निरुत्तर रह कर कहा-"यही सही आज रात्रि पूज्यपाद देवदन राज के ही राजभवन में बिताऊंगा। विशेष यमुना ने जो यत्न --"

दासी ने कहा--"राजपुत्र ! कुमारी ने आपके ही लिये यह यत्न किया है ऐसा नहीं, अतिथि सत्कार उनका अत्यंत प्रियकार्य है। राज्य भर के दीन दुखी आदि के लिये कुमारी लक्ष्मी स्वरूपा है।"

रतनसिंह ने कहा-"क्यों न होगी देवलवर राज जैसे धर्म्म परायण हैं उनकी लड़की भी वैसीही क्यों न होगी. कुमारी इतनी गुणवती है यह परम आनन्द का विषय है। मैं कुमारी से अपरिचित नहीं हूं, पहले मैं यहाँ बराबर आता जाता था। विगत पाँच वर्ष यहाँ न आया। क्यों न आया यह सब कुमारी जानती है।

दासी ने हाथ जोड़ कर कहा "यह दासी भी वह सब जानती है कुमार !"

कुछ देर बाद दासी चली गई और फिर आकर कहा-

"संध्या के [illegible] सब कुछ प्रस्तुत है अतएव महाराज चलें।"

दासी के पीछे कुमार ने उसका अनुसरण किया।

सुविशाल कमरे में जाकर कुमार ने भक्तिभाव से आराधना की। दासी स्वर्णपात्र में नाना प्रकार के सुस्वादु भोजन लाईं, थोड़ी देर में यमुना भी वहाँ आई।

यमुना की अवस्था सोलह वर्ष की है। उसका देह सुकुमार और विलास प्राप्त है। रंग उज्ज्वल और गौर है। केशराशि अत्यंत कृष्ण वर्ण है; मुक्तामाला विजड़ित वेणी पीठ के लटक रही है नयनद्वय सुविशाल, स्थिर, प्रशांत, उज्ज्वल और असामान्य बुद्धि के परिचायक है। नासिका उन्नत और वाम से विद्ध है जिसमें मूल्यवान मुक्ता संवलित लोलक लटक रहा है। दोनों कानों के दो हीरकजड़ित कर्णफूल शोभा पा रहे हैं। गले के सुवर्ण के गुंथे हुए नानाप्रकार के उज्ज्वल रत्न चमक रहे हैं। दोनों हाथ स्थूल गोल और सुकुमार है जिनमें हीरे से जड़े हुए कड़े शोभित हैं उसके वस्त्र अत्यंत मनोरम और स्वर्ण के समान उज्वल हैं।

यमुना देवरबर राज की एक मात्र संतान है। सौ पुत्रों के होने से जो आनन्द देवरबर राज को प्राप्त होता उनसे भी अधिक आनन्द उन्हें यमुना के होने से है, राजकुमारी पिता के राजकार्यों में सहायता, विपद में बुद्धि, आनन्द की हेतु और समस्त गृहकर्मोंकी कर्ता है, जब यमुना पंद्रह वर्ष की हुई उसे मातृवियोग हुआ, देवबरराज ने फिर विवाह नहीं किया। एक तो मातृहीना; उसपर भी एक मात्र संतान उसपर भी इतने गुणों से विभूषित यमुना। पिताके एक मात्र समस्त स्नेहपात्री कैसे न होती ?



कुमारी ने लज्जित वदन से वहाँ आगमन किया। रतन सिंह मोहित हो गये। उन्होंने पंद्रह वर्ष की अवस्था में जिसे ग्यारह वर्ष की बालिका देखा वही यमुना अब पूरणी है, वह इस समय यौवन के सुरभिपूर्ण पुष्पमय पथ मे प्रवेश कर रही है। आज वह बालका की तरह हँस और चंचल भाव नहीं है इस समय उसके सब अंगों में लज्जा मिली हुई है। और रतनसिंह ? रतनसिंह भी इस समय वह क्रीड़ा चपल बालक नहीं हैं। पाँच वर्ष पहले क्रीडा ही जिनका आमोद था आज वे देशकी स्वाधीनता के लिये हैं। पाँच वर्ष पहिले जो बालक-बालिका थ, आज वही युवक-युवती हैं।

यमुना नत मस्तक हो परम रमणीय भाव से खड़ी रह प्रकोष्ठ के दीपक की कोटि में उसके कानों के रत्न नासिका मोती, गले के हीरे चमचमा रहे थे और सहज सुंदरी की शोभा को सौगुनी बढ़ा रहे थे। रतनसिंह भूल गये वे किस लिये वहां पर बैठे थे, कुमारी का वहां किस लिये आगमन हुआ न पूछपके। चिरपरिचित व्यक्तिद्वय का यह नूतन भाव-का। उनके समय के भंडार से न पारे किसने पाँच वर्ष चुरा लिये ? इसी चोरी ने इस समय उनको यह व्यवहार सिखाया। पूर्व में जो बालक-बालिका थे आज वही युवक-युवती हुए हैं।

पहले रतनसिंहने पूछा—"कुमारी ! मुझे पहचानती हो।"

यमुना ने बहमुख हो कहा—"आप इतने दिन तक क्यों नहीं आये ?"

रतनसिंह-क्या इसी अपराध से मुझे भूल गई हो।"

कुमारी ने हास्य मिश्रित वाणी से कहा-" नहीं आपही

मुझे भूल गये हैं, पहले तो आप से यहां ठहरने के लिये इतना अनुरोध नहीं करना पड़ता था।

"मेरी इस समय जो दशा है क्या तुम उसे नहीं जानती ?,,

"जानती हूं, किंतु बिना एक बार भेंट किये आप का जाना क्या बिलकुल परदेशी का सा व्यवहार नहीं है ?"

द्वीप कुमार का ही था इस से वे पराजित हुए,इसी समय दासी वहां पर आई और यमुना ने उससे कहा—" कुसुम पिता जी घर नहीं है, सुतरां कुमार का आदर सत्कार यथो चित्त रीति से नहीं हो रहा है। न मालूम हमारे आतिथ्य मे कितनी त्रुटियाँ होंगी।"

रतनसिंह ने कहा -" तुम इतना शिष्टाचार कहाँसे सीख गई हो यह भी मेरा एक नूतन आतिथ्य है।"

"नूतन क्यों न होगा ? आप तो अपरिचित हैं न"

फिर कुमार की ही हार हुई। उन्हों ने कहा--" पांच साल में यहां आया, हठात् आकर भी यदि न पहचान सका--,,

राजकुमारी ने बाधा देकर कहा,—" जो अपनी आत्मीयता शिथिल समझते है वे दूसरे की आत्मीयता को दृढ़ कैसे समझ लेते हैं। आपको पांच साल देखने केबादसे न पहचान सकी।"

कुमार की तीन बार पराजय हुई। उन्होंने सोचा था इसबार इतने दिन बाद कुमॉरी के साथ देवलवर राज के ही सन्मुख प्रथम भेंट होगा।कारण इतने दिनों में कुमारी के वयपरिवर्त्तन के साथ उसका मन भी परिवतन हो गया होगा। संभव है बालिका यमुना और युदनो यमुना केमानसिक भावों में बहुत

भेद हो गया होगा। देवलवर राज के अनुपस्थित होने के कारण कुमार ने यमुना के साथ भेंट करना ठीक न समझा इसी अपराध के कारण यमुना ने उन्हें खूब लज्जित किया कुमारी ने कहा--" आप तब तक जलपान करें। रात्रि का आहार भी प्राय प्रस्तुत है। "

रतनसिंह ने सोचा--" यमुना ने मुझे बहुत लज्जित किया, मैं भी उसे क्यों छोड़ूं इसका अवश्य बदला लूंगा। प्रकाश में उन्होंने कहा--" देवलवर राजकुमारी। राजधानी के नियमों को जानकर भी पालन न करना यह महाश्चर्य है। "

कुमारी शंकित भाव से कुमार की ओर देखने लगी। उसका हीरक खचित कर्णाभरण झूलने लगा। कुमार ने उसे अपूर्व अनुपम देखा, और कहा,--" हम महाराना की आज्ञानुसार पत्तों के सिवा और किसी पात्र में आहार नहीं करते हैं, क्या तुम यह नहीं जानती हो? "

कुमारी चमक कर दो कदम पीछे हटी और ऊपर की ओर दृष्टि पात कर गद्गद स्वर से कहने लगी.--" भगवान भैरवेश! तुम जानते हो, इस हृदय में महाराणा के आदेश का क्या मूल्य है! मेरे इस क्षुद्र जीवन के बदले भी महाराना की आज्ञा उल्लंघन के पाप का प्रायश्चित न होसकेगा। फिर कुमार की ओर देखकर कहने लगी" सर्वनाश! कुमार मुझे क्षमा करो। मेरे दोष से ऐसा नहीं हुआ, परन्तु मेरी अन्यमनस्कता ने यह सब किया। जो भी हो अपराध मेरा ही है--मुझे क्षमा करिये।"

कुमार उस सुमन-सुकुमारी के कमल हृदय में प्रबल राजभक्ति और स्वदेशानुराग की गौरवलहरी को देखकर परम

आनंदित हुए। उन्होंने सोचा,—" इस देश का कभी अधःपतन नहीं हो सकता।"

कुसुम घबड़ाती हुई दौड़कर एक पत्तल ले आई। यमुना ने समस्त खाद्य द्रव्य उस में रख कर उस स्वर्ण पात्र को दूर फेंक दिया। आहार समाप्त कर रतनसिंह ने फिर रात्रि में आहार करना अस्वीकार करते हुए कहा—" इतने दिन बाद तुम से भेंट होने पर बड़ा आनंदित हुआ।"

कुमारी ने कुछ उत्तर न दिया। एक बार मुख उठाकर प्रीति पूर्ण दृष्टि से रतनसिंह के मुख की ओर देखा। उस दृष्टि ने कितना काम किया?

रतनसिंह ने फिर कहा—" मैं कल प्रातःकाल ही प्रस्थान करूंगा, फिर तुमसे भेंट होना शायद संभव नहीं।"

" क्यों ?"

" जो भीषण युद्ध की तय्यारियां हो रही हैं। कौन जाने उसमें कौन मरे कौन बचे ?"

सुन्दरी ने कुछ क्षण नीरव रह कर धीरे धीरे कहा—" माँ भवानी! मेवाड़ को विजयी करना!"

कुमार उठ खड़े हुए। कुसुम उन्हें अपने साथ ले चली। बाहर के प्रकोष्ठ में पहुँचते ही उन्हें एक कर्म्मचारी आदर पूर्वक एक सुविस्तृत कमरे में ले गया। वहां एक तृणच्छादित तख्त रक्खा था। कुमार उसमें बैठ गये। कर्म्मचारी नीचे बैठे बैठे उन से महाराना युद्ध, यवन इत्यादि नाना विषयक वार्तालाप करने लगा। क्रमशः रात्रि अधिक बीत गई। कर्मचारी विदा हुआ। कुमार ने शयन किया। निद्रा के लिये नहीं चिंता के लिये। चिरकाल से जिसे देखते आये हैं उसे आज पांच वर्ष बाद देखने

से उस युवक के हृदय में एक अद्भुत पूर्व भाव का उदय हुआ, आज उसकी शय्या चिंता निकेतन बन गई, आज से वह संसार को नूतन दृष्टि से देखने लगा, आज से कुमारी यमुना उसके अंतर और बाहर वास करने लगी। रात्रि में कुमार को अच्छी तरह निद्रा न आई। और एक निरीह हृदय को भी रात्रि में नींद न आई वह था यमुना का हृदय।

प्रातःकाल रतनसिंह शय्या त्याग प्रस्थान के लिये प्रस्तुत हुए। जब वे कमरे से चले तो उन्हें सन्मुख ही यमुना और कुसुम मिली। विदा-दान और विदा ग्रहण समाप्त हुए। इतिहास में यह लिखा नहीं है किंतु हमने सुना है कि रतनसिंह ने विदा होते समय 'पत्तन नगर जाऊंगा' कहने के स्थान के 'प्रतापसिंह नगर जाऊंगा' कहा और भूल कर कई बार घोड़े को विपरीत दिशा की ओर ले गये और यमुना रतनसिंह के जाने के चार पांच दिन बाद तक कुसुम को कभी कभी कुमार कह कर पुकारती रही और अपने प्रिय हरिण-शिशु को तीन दिन तक आहार देना भूल गई।

## अष्टम परिच्छेद।

### शिर का दर्द

उदय सागर को घेरे हुए जो अत्युच्च पत्थर का दीपक है उसके उत्तर ओर पचास तंबू तने हुए हैं, उनमें से दो तंबू अत्युत्कृष्ट बनात से बने हैं। उनके ऊपर स्थित स्वर्ण कलश सूर्य की किरणों से झलमला रहा है और उसके ऊपर बादशाह का निशान उड़ रहा है। शेष तंबू उतने सुंदर नहीं हैं। बादशाह अकबर के

सेनानायक महाराज मानसिंह सोलापुर विजय कर लौट रहे है। उदयपुर के निकट आने पर उनके हृदय में महाराणा प्रतापसिंह से भेंट करने की लालसा उत्पन्न हुई। इतिहासानुरागी व्यक्ति मात्र यह भली भांति जानते है कि मानसिंह ने अकबर के पुत्र शाहजादे सलीम के साथ अपनी बहिन का विवाह किया था। इसी कारण वे तेजपूर्ण राजपूतों की दृष्टि में अत्यंत घृणा के पात्र हो गये थे। उनको पद प्रतिष्ठा श्रेष्ठ होने पर भी उनके स्वजातीय पतित कलंकित कहकर उनकी निन्दा करते थे असाधारण बुद्धिमान मानसिंह लोगों के मनोभावों को खूब समझते थे। यह कलंक दूर करने का केवल एक उपाय था। वह उपाय था—महाराणा प्रतापसिंह का अनुग्रह प्राप्त करना। महाराना राजपूत कुल के चूड़ामणि थे। उनकी इच्छा व कार्य में कोई दोष दिखाते यह न किसी की मति थी न साहस। अतएव यदि प्रतापसिंह दयाकर उनके साथ बैठ कर भोजन कर लेते तो उनसे घृणा करने और उन्हें पतित कहने की सामर्थ किसे होती? इसीलिये मानसिंह ने महाराना की अनुकम्पा के लिये उनके यहां अतिथि के रूप में जाना स्थिर किया। मानसिंह स्थिर प्रतिज्ञ थे। उन्होंने निश्चय कियाप्रताप की करुणा प्राप्त करना ही होगी यह अपमान भ्रष्ठ न सहूंगा।

मानसिंह ने संवाद भेजा कि महाराना के साथ भेंट करने के अभिलाषी है तथा आज उनके अतिथि होंगे। प्रतापसिंह ने अपने पुत्र अमरसिंह सहित उनका सादर स्वागत किया। बिल्कुल विरुद्ध भावापन्न दो व्यक्तियों का मिलन हुआ। एक गौरव और तेज को धन और संपत्ति के हाथो बेच कर आनंदित था, दूसरे धन संपत्ति को तुच्छ समझ कर अपने असीम गौरव और तेज

से बलवान और आनंदित था। एक अमित प्रताप बादशाह का दक्षिणहस्त, उसके विपद् में सहायता, आनंद में मित्र, मंत्रणा में सचिव और अभ्युदय का मूल कारण था। दूसरा बादशाह का परम शत्रु, उसके पद को तुच्छ समझने वाला, उसके दर्पहरण के लिये चेष्टावान था। एक अतुल संपत्तिशाली अत्युच्च पद और प्रतिष्ठा का भाजन तथा असाधारण रणनिपुण होने पर भी बादशाह का दास था। दूसरा धन-जन-गृह-शून्य पथ का भिखारी होने पर भी संसार में किसी के निकट नत मस्तक नहीं हुआ था किसी के आधीन न था।

एक राजपुत्र कुल की दृष्टि में भ्रष्ट और पतित था, दूसरा स्वर्ग के देवता की भाँति भक्ति भाजन और पूजनीय था, एक के पास जो कुछ नष्ट हो गया है उसके इस जीवन में पाने की आशा नहीं थी दूसरे के पास उस नष्ट वस्तु के पुनःउद्धार के लिये शत सहस्र प्रयत्न थे, आज दो विभिन्न अवस्थापन्न, विभिन्न स्वभाव शाली, विभिन्नमतावलम्बी व्यक्तियों की परस्पर भेंट हुई है। आज बादशाह अकबर के प्रधान सेनापति, अम्बर राज्य के अधीश्वर महाराज मानसिंह–राज्य हीन, अरण्यवासी, दरिद्र प्रतापसिंह के द्वार में अतिथि बने खड़े है–उनकी कृपा भिखारी है!

साक्षात, शिष्टाचार और अभिवादन समाप्त होने पर मानसिंह ने कहा—"महाराना राजपूतकुल चूडामणि है। आपके दर्शन से आज मनमें अत्यंत आनंद हुआ।"

महाराना ने हास्ययुक्त कहा—"इस धन-जन-शून्य अभागे को देखने में दिल्लीनगर के प्रधान सेनापति और अतुल संपत्ति शाली अम्बर के अधीश्वर के आनंद का मैं तो कोई-कारण नहीं देखता हूं।"

महाराजा मानसिंह ने कुछ अप्रतिभ होकर कहा—" संसार में धन सम्पत्ति तुच्छ है, किन्तु महाराज जिस धन से धनी हैं वह बिरलों के भाग्य मे बदा है। "

प्रताप ने हँसकर कहा—" क्या सभी इस बातको जानते हैं ?"

" जो नहीं जानता वह मूर्ख है। "

" आप जब इतना समझते हैं तो मेरा विश्वास है आप यह भी समझेंगे कि मेरा जो कुछ था मैं उसकी इच्छा मात्र होने से रक्षा भी कर सकता "

सुचतुर मानसिंह ने देखा वह बात क्रमशः उसके उपर आक्रमण कर रही है। वह क्या उत्तर दें कुछ ठीक न कर सकें। उनके मुख ने लज्जा का भाव धारण किया। वह अभी तक स्थिर प्रतिज्ञ थे। अपमान को हँसी में उड़ा सकते थे। क्रोध के वशी भूत होकर कार्य्य हानि न कर उन्होंने कहा—" जो रक्षा नहीं कर सकता वह निर्जीव है। इस प्रकार महाराज कितने दिन रहेंगे ?"

" जितने दिन जीवित रहूंगा, नहीं तो और उपायही क्या है "

" उपाय क्या नहीं है ? "

महाराना ने कुछ सोच कर कहा—" उपाय है-आपका अनुसरण करना ही उपाय है। किंतु ऐसा उपाय प्रतापसिंह कभी स्वप्न में भी ग्रहण न करेगा। "

मानसिंह अप्रतिभ हुए किंतु वे अभी स्थिर प्रतिज्ञ थे। कुछ देर बाद कहने लगे " आप विचार कर देखें कर्त्तव्य क्या है ! कहिये आप किस उपाय से मान रक्षा करेंगे ! "

प्रतापसिंह ने हँसकर कहा—" युद्ध करूंगा, जय प्राप्त करूंगा साहस से क्या नहीं होता ? "

" स्वीकार करता हूं, साहस से असंभव कार्य भी हो सकते

है, किंतु महाराज देखें समय कैसा है।"

"समय यदि मंद है तो वह आपके लिये है। आप यदि हमारा पक्ष न छोड़ते तो हम सब मिल कर इस शुद्र अकबर को तृण के समान फूँक कर उड़ा देते। भारत में अकबर की जो श्रीवृद्धि हुई है- उसका अधिकांश कारण आपका पराक्रम ही है। अकबरराज का वह बलवान हाथ यदि विधर्मी यवन की सेवा न करता तो अकबर बुलबुले के समान समर--सलिल में मिल जाता, उसका अस्तित्व भी न रहता।"

मानसिंह ने कहा--"जो हुआ वह अब लौट नहीं सकता इस समय—"

महाराना ने बाधा देकर हँसते हँसते कहा—"इस समय क्या आप चाहते है सब आपके ही समान हो जायँ ?"

मानसिंह कुछ क्षण नीरव और नत मुख रहने के बाद बोले—"महाराणा की वीरता से बादशाह अपरिचित नहीं है, वे नित्य ही आपकी प्रशंसा करते है।"

प्रताप—यवनभूपाल की गुण ग्राहकता से परिचित हुआ। किन्तु मैं अभी तक असली रूपसे उसे अपनी शक्ति का परिचय न दे सका, यही मेरा दुःख है।

मानसिंह—किन्तु महाराणा बादशाह के प्रबल पक्ष के सामने आपकी जय की आशा असंभव नहीं है क्या ?

प्रताप—जय न होवे मानकी तो आशा संभव है। सिसौदिया कुल जिस गौरव की आज तक रक्षा करता आया है, किसकी शक्ति है उसे नष्ट कर सके !

मानसिंह—इसे मैं स्वीकार करता हूं। किंतु उस गौरव की रक्षा करने के लिये जिस आयोजन की जरूरत है वह महाराना

के पास है।

प्रताप—मेरा यदि कुछ नहीं है आपका मैं तो हूं, अतएव जबतक मैं रहूंगा तबतक चित्तौड़ का गौरव अटूट रहेगा।

मानसिंह – परमेश्वर करे ऐसा ही होवे मेरी यही प्रार्थना है। महाराज जबतक हैं तब तक राजपूत जाति की आशा है किंतु महाराज तो सदा रहेंगे नहीं तब क्या होगा?

प्रताप—तब क्या होगा नहीं जानता। सम्भवतः तब वह गौरव लुप्त हो जावेगा किंतु उस पाप का भार मेरे सिर पर नहीं होगा।

मानसिंह—अवश्य जो गौरव चिरदिन नहीं रहेगा उसके लिये ऐसा क्लेश क्यों उठाया जाय।

प्रतापसिंह की आँख उज्ज्वल हुई, उन्होंने हँसते हँसते कहा—"यह बात आपके मुख से अच्छी सुनाई देती है किंतु मेवाड़ का प्रतापसिंह यह बात नहीं सुन सकता।"

मानसिंह दोनों हाथों से मुख ढककर नतमस्तक हो नीरव हुए, अभीतक वे स्थिर प्रतिज्ञ थे।

एक कर्मचारी ने आकर कहा—"आहार प्रस्तुत है।"

प्रतापसिंह मानसिंह की ओर देख कर बोले—"मैं स्वयं एक बार देख आता हूं, आप कुछ देर ठहरिये।"

कुछ देर बाद अमरसिंह ने आकर कहा—"महाराज भोजन तय्यार है।"

मानसिंह अमरसिंह के पीछे पीछे चले।

प्रासाद के समीप के एक मनोहर स्थान में राज—अतिथि के सत्कार के लिये प्रबंध किया गया था। वहीं एक जगह स्वर्णपात्र में तथा उससे कुछ दूर एक पत्तल में भोजन परोसे गये थे। मानसिंह ने देखते ही समझ लिया कि पत्तल महाराना

के लिये परोसा गया है किंतु उन्होंने चारों ओर देखा पर महाराना को न पाया । मनमें शंका उत्पन्न हुई । उन्होंने कुमार से पूछा-" राजपुत्र ! पिता कहां है ? " अमरसिंह ने उन्हें स्वर्णपात्र दिखाते हुए कहा,--" आप बैठें पिता शीघ्र ही आते हैं । "

मानसिंह ने पूछा —" मेरे लिये स्वर्णपात्र और महाराना के लिये वृक्ष पत्र क्यों । "

अमरसिंह—इसमें हानि क्या है । महाराणा जिस कारण पत्तों में भोजन करते है आपका वैसा कोई कारण नहीं है ।

मानसिंह ने स्वर्णपात्र के समीप बैठ कर कहा–युवराज ! महाराणा किस काम में संलग्न है । "

अमरसिंह – आप भोजन करना आरंभ करें, मैं उन्हें बुलाता हूं ।

मानसिंह — यह कैसे होगा । बिना उनके उपस्थित हुए मैं कैसे भोजन करूं । आप उनको बुला लावें ।

अमरसिंह ने प्रस्थान किया और थोडी देर में आकर कहा— महाराना की अनुमति है आप भोजन आरंभ करें । विशेष प्रयोजन होने के कारण महाराना समीपस्थ महल में गये है, शीघ्र ही आते हैं । "

मानसिंह के मनमें संदेह उत्पन्न हुआ । उन्होंने सोचा— " जान पड़ता है मेरी आशा पूरी न होगी, महाराना के लिये भोजन परोसा गया है यह शिष्टाचार और कौशल मात्र है । जिससे मुझे पूरा विश्वास हो जाने कि महाराना को मेरे साथ भोजन करने में कुछ भी आपत्ति नहीं है । यह विशेष प्रयोजन सिर्फ बहाना मात्र है, हाय ! " इतना अपमान सह कर प्राण

में भिक्षुक बन कर भी आशा पूरी न हुई। "उन्होंने आचमन किया और अन्न देवता को भोजन अर्पण कर कुछ अपेक्षा की परन्तु प्रतापसिंह न आये। मानसिंह ने कहा,—" कुमार ! वह प्रासाद तो बहुत दूर न होगा, आप एक बार जाकर देख आवें महाराज के आने में क्यों विलम्ब हो रहा ? "

अमरसिंह ने फिर प्रस्थान किया और थोड़ी देर में आकर बोले—" महाराज पिता सिर की वेदना से बहुत पीड़ित हैं इस कारण वे यहां शीघ्र न आ सकेंगे। आप उनकी प्रतीक्षा न कर भोजन आरंभ करें। "

मानसिंह ने समझ लिया प्रतापसिंह उनके साथ भोजन न करेंगे, मस्तक—वेदना सिर्फ छलना है। मनोरथ पूर्ण न हुआ अपमान हुआ। इतना धैर्य, इनकी सहिष्णुता सब वृथा हुई। स्थिर प्रतिज्ञा का कुछ फल न हुआ। वे बहुत देर तक गंभीर भाव से बैठे रहे। अमरसिंह ने उस जगज्जयी वीरश्रेष्ठ महाराज मानसिंह की आँखों को अश्रुपूर्ण देखा। वे कभी उस अपमान का बदला लेने के लिये सोचते थे उस समय क्रोध से उनकी छाती फूल उठती थी, कभी असाधारण धीरता से वे क्रोध को शांत कर देते थे। कुछ क्षण नीरव रहने के बाद मानसिंह ने कहा, " कुमार तुम बुद्धिमान होने पर भी अभी बालक हो। तुम अभी तक नहीं समझे हो महाराज को मस्तक—वेदना क्यों हुई ; जो हो गया सो होगया। उस पर अब कुछ वश नहीं, मैं बहुत दूर बढ़ गया हूं, अब लौटने का उपाय ही नहीं है, जो भूल हो गई उसका संशोधन करना असंभव है। महाराणा राजपूत जाति चूड़ामणि हैं इसी लिये मैंने आशा की थी महाराना के सिवा और कौन मुझे जाति—दान देगा। कारण उनकी बात को काटे

ऐसा शक्ति शाली कौन है ? जब महाराज ने ही मेरे साथ बैठ कर भोजन करना अस्वीकार किया तो और कौन स्वीकार करेगा। कुमार, जरा सोचो तो सही इससे न महाराना को लाभ हुआ न मानसिंह को हो। मानसिंह के साथ मित्रता की जगह शत्रुता करने में सुविधा नहीं है। मानसिंह की शक्ति महाराना खूब जानते हैं। आज यदि इस प्रकार अपमानित न होता तो वही मानसिंह महाराना के चरणों का दास होकर रहता, अतः दिल्लीश्वर के साथ इच्छानुरूप मित्रता हो जाती और महाराना का सौभाग्य उनके अनजान में ही उनके आश्रय में आ जाता। और अब ? अब मर्मपीड़ित, अपमानित, चरणदलित मानसिंह महाराजा का आत्मीय नहीं है। उनका अब जो कुछ होवे मानसिंह का उससे कुछ संबंध नहीं। उनकी क्या दशा होगी उसके वर्णन करने की मेरी इच्छा नहीं है।"

मानसिंह नीरव हुए। अब तक अपमानित मानसिंह का धैर्य्य प्रशंसनीय था। अब तक उनके दुःख का भाग ही प्रबल था। इतने में एक उच्च कर्मचारी ने आकर कहा,—"महाराज महाराणा ने मुझ से यह कहला भेजा है अत्यन्त प्रबल शिर दर्द के कारण मैं उपस्थित न हो सकने के कारण दुखी हूं। और—"

कर्मचारी चुप हो गया। मानसिंह ने कहा—"और क्या, कहो।"

"और उन्होंने कहा जिसने यवन के साथ अपनी भगिनी का विवाह किया है और शायद यवन—कुटुम्ब के साथ बैठकर भोजन भी किया हो उसके साथ मेवाड़ेश्वर कभी भूलकर भी भोजन नहीं कर सकते और न आपको ही ऐसा दुराशा करना उचित है।"



अब मानसिंह की सहनशीलता का बंधन ढीला हुआ, क्रोध को न दबा सके, मुखमंडल प्रदीप्त हो गया। जातीय रीतिके अनुसार भोजन में से थोड़ा अंश लेकर अपनी पगड़ी में रक्खा और उठ खड़े हुए। जाते समय कहने लगे,–" अमरसिंह, अपने पिता से कहना दुहिता भगिनी इत्यादि यवन-अंतःपुर में उपहार देने से भी राजपूत सन्मान की रक्षा हो रही थी, किंतु मै क्या करूं। प्रतापसिंह अपने ही शुभानुध्यान में अंधे हो रहे है। देखता हूं, अब हिन्दू जाति की जय की आशा नहीं है। यवन-प्रताप के आगे सब नीचे होंगे। भगवान की इच्छा को कौन तोड़ सकता है ?"

मानसिंह ज्यो ही घोडे पर चढे प्रतापसिंह वहां पर आकर उपस्थित हुए। मानसिंह ने सगर्व कहा–"प्रतापसिंह निश्चय समझो इस अपमान का बदला लूंगा। यदि इस अपमान का यथोचित बदला न पाओ तो मेरा नाम मानसिंह नहीं।"

प्रतापसिंह ने हंसकर कहा, – "मानसिंह ! तुम मुझे क्या भय दिखाते हो ? *बाप्पाराव का वंश भय को नहीं जानता। जब तुम्हारी इच्छा हो आना प्रतापसिंह तुम्हारे लिये सदा युद्धार्थ तैयार रहेगा।"

प्रतापसिंह के पीछे देवलवराज खड़े थे। उन्होंने कहा– हो सके तो अपने फूफा अकबर को भी साथ लेते आना।"

मानसिंह के सिवा और जितने वहां पर खड़े थे उच्चहास्य से हंसने लगे, मानसिंह की आंखों से आग की चिनगारियां निकलने लगी उन्होंने घोड़ा फिराया:– फिर कुछ सोचकर घोड़ा लौटा लिया। थोड़ी देर में वे अदृश्य हो गये। अमरसिंह ने कहा, – "मानसिंह बहुत व्यथित हो गये हैं। मेरी समझ

* बप्पाराव की जीवनी अलग छप रही है।

में इसका परिणाम अच्छा न होगा।'

प्रताप ने हंसकर कहा,—"अमर भय कौन सा!

"पिता! भय की बात नहीं। मेरी समझ में मानसिंह बदला लेने के लिये प्राणपण से चेष्टा करेगा।

'तब क्या होगा। देवलवरराज, तुमने बहुत ठीक कहा, क्षुद्र हृदय मानसिंह ने आज खूब शिक्षा पाई।"

इसके बाद जहां मानसिंह भोजन के लिये बैठे थे वह स्थान पवित्र गंगा जल से धोया जाकर हल द्वारा खोदा गया और जो वहां पर उपस्थित थे वे सब गंगाजल द्वारा स्नान कर तथा वस्त्र बदल कर शुद्ध हुए, धन्य जाति—गौरव! धन्य तेज! चांडाल को स्पर्श में जितना अपवित्रता नहीं उससे अधिक अपवित्रता यह राजपूत कुल पुंगव इस असभ्य हस्ती असाधारण बुद्धिमान यवनों के साथ भेंट तथा वार्तालाप करने में समझते थे।

## नवमपरिच्छेद।

### परिचय।

संध्याकाल चाँदेरी नदी तीरस्थ सैन्य दुर्गद्वार में युवराज अमरसिंह घोड़े से उतरे चाँदेरी नदी विस्तृत है, किंतु प्रताप के कठिन शासन में आजकल वहां एक भी नाव नहीं है चारों ओर जनशून्य है। उस शून्य नदी तीर के चारों ओर घने जंगल में काले पत्थर का बना हुआ दुर्ग भयानक दृश्य प्रदर्शित कर रहा है। उस दुर्ग की यथावश्यक व्यवस्था करने का भार अमरसिंह के ऊपर दिया गया है। कुमार के दुर्ग द्वार में

पहुंचते ही दुर्ग रक्षक आलोक जला कर सम्मानपूर्वक उनको दुर्ग के भीतर ले गये। भीतर जाकर अमरसिंह विस्मित हुए उन्होंने देखा पास ही एक शिविका है तथा कई शिविका वाहन और रक्षक हैं। अमर ने दुर्ग रक्षकों से पूछा–" यह सब कौन हैं ?"

दुर्ग रक्षक विषम विपत्ति में पड़े। बिना आज्ञा के दुर्ग में किसी को स्थान देने से अमर नाराज होंगे इस भय से वे सब चुप रहे। कुमार ने फिर पूछा— क्या बात है कुछ समझ में नहीं आता तुम लोग कहने में आंना कानी क्यों कर रहे हो ?

वृद्ध रक्षक आगे बढ़कर हाथ जोड़ कहने लगा,—" महाराज अपराध हुआ, क्षमा करिये। नाथद्वार नगर के राजा रघुबर राय की दुहिता शैलेश्वर को जा रही थीं। यहाँ पर संध्या हो गई पास में ही कहीं टिकने का स्थान न था। उनको इस प्रकार विपति में देखकर हम लोगों ने उन्हें इस दुर्ग में रात बिताने को जगह देदी।

अमर-वह कितने आदमी हैं ?

' एक अल्पावस्था स्त्री और एक संगिनी।"

''राजा रघुबर राय'' इन शब्दों को धीरे धीरे कह कर कुमार ने दक्षिण दिशा की ओर के एक कमरे में प्रवेश किया वहां बैठ कर मन हीं मन कहने लगे,–" राजा रघुबर-राजा रघुबर यह मेवाड़ के विशेष मित्र न थे। कुछ देर बाद फिर कहने लगे,– "विशेष शत्रु भी न थे, किंतु हां वे अब इस संसार में भी नहीं हैं।" इसके बाद कुमार ने दुर्ग के प्रधान रक्षक को बुलाया। उसने आकर दुर्ग संबंधी परामर्श किये।

परामर्श करते करते रात के दो पहर बीत गये, इसके बाद रक्षक को विदा कर कुमार ने शयन किया। विशेष गर्मी के कारण कुमार को नींद न आई। व्यर्थ नींद को बुलाना राज पूतों का स्वभाव नहीं होता कुमार उठकर छतसे वायुसेवन क लिये गये। रात प्राय तीन पहर बीत चुकी थी। अब पूर्व की भांति अंधकार न था विमल ज्योत्स्ना ने अपनी रजत रश्मियों से सारे संसार को उज्जल कर दिया था। प्रकृति शांत थी समीप ही चांदेरी नदी रेतीले किनारे को धोती हुई चंद्रमा और अनगिनती तारा राशि को हृदय में धारण कर अविश्रांत भाव से वह रही थी। अमरसिंह छत में घूमने लगे हठात् उन्होंने चारों ओर से दृष्टि हटाई और नाथद्वार निवासिनी ऊर्म्मिला की चिंता में लीन हुए। एक बार उनकी दृष्टि सामने की ओर गई देखा एक रमणी। कुछ देर बाद उन्होंने समझा दुर्गाधिपति राजा रघुवर की कन्या वायुसेवनार्थ खड़ी होगी। फिर अमर के मन में स्वतः प्रश्न उठा ऊर्म्मिला भी तो नाथद्वार ही की भगिनी है, वही तो राजा रघुवर राय की कन्या नहीं है? उत्तर स्थिर किया "हो सकती है" फिर आशंका हुई-"पिता रघुवर के नाम से मैं संतुष्ट क्यों नहीं अमरसिंह का हृदय शुष्क और शून्य हो गया। उसके बाद सोचने लगे" भाग्य में जो बदा है होवे किंतु मैं उस देव मूर्त्ति को हृदय से बाहर न करूंगा। हठात् मानो किसी ने उनसे कहा-"यह रमणी ही ऊर्म्मिला ही है। कुमार ने उस स्त्री के निकट जाने पर देखा उनकी आशंका सन्ध में परिवर्त्तित हुई—वह रमणी ऊर्म्मिला ही है! अमरसिंह का मस्तक घूर्ण हुआ, पृथ्वी शून्य प्रतीत होने लगी।

इससे पूर्व पाठक दो बार ऊर्म्मिला से परिचित हो चुके हैं। दोनों बार ऊर्म्मिला योद्धा वेश में सज्जित थी। आज उसका दूसरा वेश है। आज बर्छी तलवार को जगह हीरे जड़े हुए स्वर्णालंकार उसके समस्त शरीर को शोभा दे रहे हैं। इस समय उसके मुख में शाँति सरलता, पवित्रता और असामान्य बुद्धि क्रीड़ा कर रहे हैं। कोमलता उसके सारे शरीर में राज्य कर रही है। इस समय कौन कह सकता वह भुवन मोहिनी अकेली गंभीर रात्रि में बर्छा हाथ में लेकर घूम सकती है ? कौन कह सकता है इस कोमलांगी के कमनीय शरीर में ज्वलंत अलंकारों की अपेक्षा युद्ध के हथियार ही शोभा पाते हैं।

कुछ देर में अमरसिंह ने प्रकृतिस्थ होकर कहा - "कुमारी आज यहां तुमसे फिर भेंट होगी यह मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था।"

उर्मिला ने धीरे धीरे कहा-" मुझसे किसी ने भी नहीं कहा कि आप यहीं हैं।"

"तुम्हारे दुर्ग में आने के बाद मैं आया, तुमसे मिलने की आशा में मैंने बहुत प्रयत्न किया किन्तु मेरा दुर्भाग्य कृत कार्य न हुआ।"

ऊर्मिला–आप कृपाकर मुझे न भूले यही मेरा सौभाग्य है

अमरसिंह–आज इतने दिन बाद समझा तुम स्वर्गीय रघुवर राय की कन्या हो। किंतु तुम जिसकी भी सन्तान हो मेवाड़ की तुम परम हितैपिणी हो।

सुन्दरी कुछ देर तक नतमस्तक हो खड़ी रही, फिर कहने लगी–" युवराज। मैं आपकी दृष्टि में पतिता हूं, कारण मैं

रघुवरराय की दुहिता हूं, जन साधारण का विश्वास है मेरे पिता मेवाड़ के योग्य न थे इसी लिये महाराना उन्हें पतित कहते थे। जन साधारण जो कहे, आप जो समझे, मैं मुक्त कंठ से अपनी धारणा संसार से कहूंगी। मेरी धारणा मेरा विश्वास है पिता की राजभक्ति तथा मेवाड़ की हित चिंतना में कोई त्रुटि न थी। जनसाधारण देशहितैशिता कहते हैं पिता में वह दशगुण अधिक थी। किंतु उनको एक भ्रांति थी कि सहस्त्र चेष्टा से भी अब मेवाड़ का उद्धार संभव नहीं, मेवाड़ पतन आरम्भ हो गया है शीघ्रही उसका अवसान हो जायगा। इस समय इसके प्रतिकूल प्रयत्न करना बालू के बाँध से प्रखर नदीका गति रोकने के समान व्यर्थ विडम्बना मात्र है। इसी भ्रांति के वशीभूत होकर वे कोई भी चेष्टा न कर भाग्य के ही भरोसे रहे। उनकी यह भ्रान्ति देशोद्धार में उदासीनता तथा महाराना के साथ मनोमालिन्य की कारण हुई, किंतु यह बात इस समय में किससे कहूं; कौन विश्वास करेगा।

अमर—कोई विश्वास करे या न करे, मैंने—किसी से भी यह कभी नहीं सुना कि तुम्हारे पिता ने हमारा कुछ अनिष्ट किया।
उर्मिला—लोग विश्वास न करेंगे महाराना इस पर कर्णपात करेंगे किंतु महाराज यह क्षुद्रकाया पितृहीना कुमारी इस विश्वास को दूर करेगी, युवराज यह मनोमालिन्य मेरेही द्वारा शेष होगा। मैंने देश के हाथ यह क्षुद्र प्राण बेच दिया है मैंने तेज-तलवार को ही इस देह का प्रधान आभूषण बनाया है। युवराज! क्या महाराना अब भी न समझेंगे? अब भी सदय न होंगे। यदि इतना करने पर भी उनकी करुणा न पा सकूंगी

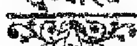
तो उनके चरणों में अपने इन क्षुद्र प्राणों को अर्पित कर अपनी अदम्य राजभक्ति का परिचय दूंगी। कुमार क्या फिर लोग न कहेंगे रघुवरराय की कन्या के देह में अति पवित्र राजभक्ति की रक्त प्रवाहित थी।,,

अमर- जब तुम्हारी यह अनिर्वचनीय गुणराशि महाराज सुनेंगे तो वह तुम्हारी आराधना करेंगे। इस प्रकार अकृत्रिम राजभक्ति, इस प्रकार आंतरिक स्वदेशानुराग क्या कहीं किसी ने देखा है। मैं जानता हूं तुम मानवी नहीं देवी हो। तुम्हारी जो उच्च मनोवृत्ति ईश्वरेच्छा से मेरे निकट प्रकाशित हुई हैं वह राजपूतों की गौरव की चीज है। उर्मिले। मैं अपनी बात कहता हूं मैं आजीवन तुम्हें परम श्रद्धा से देखूंगा और तुम्हारी इस मूर्ति को हृदय में स्थापित किये रहूंगा।,,

कुमारी लज्जासे मुख नीचा कर चुप रही। अमरसिंह ने पूछा,—"सुना है तुम शैलश्वर जारही हो, शैलश्वरराज तुम्हारे मामा हैं यह मैं जानता हूं। हाँ, महाराना के विराग भय से उन्होंने तुम्हारे साथ तनिक संपर्क नहीं रक्खा था। क्या अब भी ऐसा ही है"

उर्मिला—जिस कारण उन्हें महाराज का भय था वह कारण ही अब इस संसार में नहीं है, सुतरां मामा का भी मेरे प्रति वह भाव नहीं है। पिताके मरने के बाद मामा ही मेरे अभिभावक हुए। मेरे प्रति उनके स्नेह की सीमा नहीं हैं। मामा और मामी के निसन्तान होने के कारण मैं ही उनके वात्सल्य का एक मात्र वस्तु हूं। आज उन्हीं की आज्ञा से मैं वहां को जा रही हूं।

अमरसिंह ने आदर पूर्वक कहा,—"अच्छा हुआ,



फिर देखने का भरोसा हुआ। महाराज के दाहिने-हस्त-स्वरूप शैलेश्वर राज मेरे ऊपर संतानस्नेह रखते हैं। उनका घर मेरे लिये पराया घर नहीं है।"

उर्मिला—क्या कुमार का इतना अनुग्रह होगा। क्या कुमार को कभी इस अभागिनी के साथ भेंट करने की सुधि रहेगी !"

कुमार ने विस्मित होकर कहा, यह कौनसी आशंका उर्मिला ! क्या मैं मनुष्य नहीं हूं। तुम्हें भूल सकूंगा।"
उर्मिलाने मुसुका कर कहा, "कुमार के कितने ही कार्य्य होंगे; कितने ही विषयों में अनुराग होगा। उन कार्य और अनुराग—सागर में यह क्षुद्र हृदया मन्दभागिनी न जाने कहां डूब जावेगी।"
"शत कार्य्य शत अनुराग एक ओर, और कुमारी उर्मिला एक ओर।"

दोनों नीरव रहे। वाक्य स्रोत को आगे बढ़ाने को किसी का साहस न हुआ।

रात्रि प्रायः शेष होने को हुई। ज्योति मई ऊषा आकर रजनी को दूर करने लगी। पक्षिगण इस परिवर्त्तन से आनंदित होकर चारो ओर से शब्द करने लगे। तब ऊर्मि-लाने कहा—" युवराज ! देखते देखते रात्रि बीत गई ! मेरी यात्रा का समय उपस्थित है, अतएव मुझे विदा दीजिये।"

युवराज,—तुम्हें विदा देना सहज नहीं, किंतु विलम्ब होने से असुविधा होगी। भगवान भगवती पति तुम्हें सुखी रक्खे ऊर्मिला ने कुछ कहने के लिये मस्तक उठाया अधरों में स्पंदन हुआ किंतु एक भी शब्द नहीं सुनाई दिया।

ऊर्म्मिला चली गई।

अमरसिंह संज्ञाशून्य के समान कुछ देर वहीं खड़े रहे। अचानक दूर रक्षकों का " हर-हर-बम-बम्" शब्द सुन चैतन्य। हाकर सोचने लगे,—" इस देवी के निकट चित्त-विनिमय करने का यदि पिता के समीप अपराधी हुआ तो पिता के संतोष के लिये इस कुसंतान के भाग्य में कुछ भी न होगा।" फिर वहां से चले गये।

उर्म्मिला युवराज के निकट से धीरे धीरे चली। किसी ओर उसका लक्ष्य न था कहीं उसका मन न था। सहसा अपनी प्रौढ़वयस्का संगिनीको देखकर कहने लगी,—" कौन? तारा! मैं तो भयभीत हो गई थी।"

संगिनी सिर से पाँव तक जल उठी। वह कुमारी को शय्या में न देख उसकी खोज में गई थी। वहां जाने पर उसने देखा कुमारी उर्म्मिला एक अपरिचित पुरुष के साथ बातचीत में मग्न हो रही है। उसने सोचा क्या यह भ्रम तो नहीं है। अन्त में वह संज्ञाशून्य होगई।

उर्म्मिला की बात सुनकर वह क्रोध से काँप कर कहने लगी,—' जो राजपूत-रमणी रात को एकान्त में पर पुरुष के साथ वार्तालाप कर माता पिता के वंश को कलंकित कर सकती है, उसे भय किस चीज की "

उर्म्मिला बचपन में ही मातृहीना होगई थी। तारा ने ही मातृवत् उसे पाला था। इसीलिये तारा को ऊर्म्मिला का दोष देखकर उसके ऊपर शासन करने का पूर्ण अधिकार था। तारा के घोर अपमान ने ऊर्म्मिला के पवित्र कलंक हीन हृदय में गहरी चोट पहुँचाई। तारा के ऊपर उसका सहज ही

क्रोध न होता था किंतु इस बार हुआ । उसने यथा साध्य हृदय को शांत कर कहा,—"किसी से यदि कुछ कहना हो तो कुछ सोच विचार कर कहा करो। बिना सोचे समझे कुछ कह देने से सर्वनाश हो सकता है"

तारा—मैंने बिना जाने क्या कहा। जो स्पष्ट आँखों से देखा वही कहा. तू क्या सोचती है मुझे धमकाने से चल जायगा। तूने जो किया है उसका फल शेखर आकर मिलेगा। जा तुझसे अब मेरे बोलने की जरूरत नहीं। जिसका चरित्र इतना हीन है मैं उससे बोलना नहीं चाहती! तुम्हारी जहाँ जिसके साथ जाने की इच्छा हो जाओ।

तारा जाने लगी। ऊर्मिला ने कहा—"सखि! सब सुनलो फिर जो कहने की इच्छा हो कहना," तारा चुपचाप खड़ी रही, ऊर्मिला ने सुनाना नदी और युवराज की प्रथम साक्षात् से लेकर आज तक जो जो हुआ सब कहा। तारा ने सुनकर कहा,—"इतना होगया आजतक कहा क्यों नहीं?"

ऊर्मिला—और सुनो तुम जिसे पर पुरुष कहती, वे तुम्हारे समीप पर पुरुष हो सकते हैं, किंतु वे मेरे हृदय के राजा हैं—मेरे स्वामी हैं। मैंने भवानी गौरी का शपथली है कि —युवराज अमरसिंह के सिवा और किसी को इस हृदय में स्थान न दूंगी। जानती हूं, यह आशा दुराशा मात्र है, समझती हूं यह इच्छा पूरी न होगी, तथापि तारा! मैं समुद्र में कूद गई हूं। यदि इसमें मेरा दोष है तो मुझे दुःख नहीं। बिना समझे बूझे निराश प्रणय-सागर में डूबने के लिये यदि तुम मुझसे घृणा करो, या मानव समाज मुझे कलंकित करे तो—तारा! तुमारी घृणा और मानव समाज के कलंक की ओर भ्रूक्षेप भी न करूंगी।

तारा कुछ न कह उर्मिला का हाथ पकड़ घर के भीतर चली गई

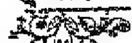
---

# दशम परिच्छेद

## मंत्रणा ।

---

अपराह्न का समय है। आगरा के अति मनोहर संगमर्मर निर्मित सम्राट-भवन के स्वर्ण चूड़ा में अस्तोन्मुख सूर्य की स्वर्णमयी किरणें झलमला रही हैं. प्रासाद के ऊपर की पताका पवन के हिल्लोल से कभी सीधी और कभी टेढ़ी हो रही है। प्रासाद आधे कोस की सीमा में स्थित है। इस समय उन अगणित पुरी और प्रकोष्ठों को देख कुछ प्रयोजन का नहीं है। बादशाह अकबर नित्य प्रात:काल दरबार गृह में उमराओं के साथ राजकीय कार्यों की आलोचना करते हैं। दोपहर बाद वे मंत्रणागृह में बैठकर विशेष विशेष आदमियों से गूढ़ विषयों का परामर्श लेते हैं। उसके बीच में तुर्किस्तान का बना हुआ एक अति चमत्कारित गलीचा बिछा हुआ है। उस गलीचा के ऊपर हीरक-रचित स्वर्णमय सिंहासन में सम्राट कुलतिलक अकबर आसीन हैं। उनके समीप ही एक आसन में एक अपूर्व कान्ति



मय राजपूत युवक बैठे हैं वे बीकानेर के कुमार पृथ्वीराज हैं। सुकौशली अकबर भली प्रकार जानता था कि राजपूत गण ही भारत के मूर्ति स्वरूप हैं। वे साहस में अतुल, बल में अजेय और बुद्धि में अद्वितीय हैं। अतएव बिना उनको पक्ष में किये भारत में मुसलमान राज्य टिक ही नहीं सकता। अकबर का यही विश्वास उसकी उन्नति का मूल कारण था। उसने कौशलतापूर्वक राजपूत-प्रधानों को अतिमान्य राज्य धिकारी बनाया। धर्म वैपरीत्य से अथवा प्रभुभृत्य संबंध से बद्ध होकर रूप से उसने कभी राजपूतों का अनादर नहीं किया। इसी लिये असाधारण बल और कौशल सम्पन्न राजपूतगण क्रमशः उसके अधीन हुए तथा विजेता और विजित भाव क्रमशः लुप्त होता गया। राजपूत कृतघ्न नहीं होते, वे समादृत अतुल सम्मान लाभकर उसी के कर्म रता हो गये, सुतरां मुगल-राज्य-श्री शीघ्र ही अत्युन्नत गौरव के पद में आरूढ़ हो गई। कुमार पृथ्वीराज आत्मराज्य की स्वाधीनता की रक्षा न कर सकने के कारण विजयी अकबर शरणागत हुए। अकबर ने उन्हें परम आदर पूर्वक ग्रहण किया। उनमें एक असाधारण शक्ति थी, वे आशुकवि थे–बोलते बोलते कविता रचना कर देते थे कथा पत्र इत्यादि जो कुछ लिखते थे सब कविता बद्ध। गुणग्राही अकबर ने उन्हें 'राजकवि' की पदवी से और सर्वदा उन्हें आदर पूर्वक साथ रखते थे। यद्यपि पृथ्वीराज, सम्राट की किसी प्रकार की कृपा से वंचित न थे तथापि वे आत्म राज्य की स्वाधीनता खोने के कारण सदा अपने को अत्यंत घृणा ही समझा करते थे। उनका प्रतापसिंह पर बहुत अनुराग था

कारण, मेवाड़ की स्वाधीनता की रक्षा के लिये जितना प्रयत्न वे कर रहे थे उतना कोई भी नहीं कर रहा था।

आज बादशाह सोलापुर-विजय का संवाद सुन। बहुत आनंदित है वे पृथ्वीराज से कह रहे हैं,—"क्यों राजकवि ! मानसिंह के समान रणनिपुण और अध्यवसाय शील जान पड़ता है और कोई दूसरा नहीं'

पृथ्वीराज-अवश्य, बादशाह के समान असाधारण प्रतापशाली व्यक्ति का अभिप्राय के लिये जो कोई भी कार्य करेगा उसके सफल होने में संदेह नहीं, मान सिंह तो असाधारण योधा है।

अकबर-वीरचुड़ामणि मानसिंह मेरे दक्षिण हस्त हैं। शायद तुमारे देखने में भी मानसिंह के समान कर्मवीर और अध्यवसायी कोई दूसरा व्यक्ति न होगा।

पृथ्वीराज–महाराज मानसिंह असाधारण वीर है इसमें किसी को आपत्ति नहीं। किन्तु बादशाह यदि कुछ सोचें तो वे जानेंगे कि आज भी राजपूत कुल में ऐसे वीर हैं जो मानसिंह को तृण के समान समझते है तथा उन्हे कई दिन तक तलवार चलाने की शिक्षा दे सकेंगे। वे विक्रम में अतुल हैं, प्रतिज्ञा पालन से दृढ़व्रत है तथा रण कौशल में अकिर्वचनीय हैं। ऐसे व्यक्तियों के रहते हुए भी मानसिंह को सर्वश्रेष्ठ कहना यह तुच्छ पृथ्वीराज स्वीकार नहीं कर सकता।

अकबर—जान पड़ता है तुम्हारा मतलब प्रताप सिंह से है। हां मुझे स्वीकार है प्रतापसिंह असाधारण वीर, अतिशय दृढ़ प्रतिज्ञ और नेक भी है। किन्तु क्या तुम समझते हो उसका

तेज चिरदिन रहेगा। मानसिंह के द्वारा ही प्रताप का गर्व खर्व किया जायगा। अब शीघ्रही उसके बल विक्रम की परी- क्षा होगी।

पृथ्वीराज-बादशाह! मेरी क्षुद्र मति से तो प्रताप को पराजित करना सहज न होगा-कभी किया जायगा या नहीं इसमें भी संदेह है। मानसिंह प्रतापसिंह का क्या कर सकेंगे उस अदम्य विक्रम प्रवाह में मानसिंह रूपी हाथी न जाने कहां डूब जायगा।

इसके बाद मनही मन कहने लगे प्रताप तुम्हारा जन्म सा- र्थक है। किन्तु समुद्र में लहरें उठ रही हैं सब डूब जावेंगे, तूफान आ रहा है सब उड़ जावेंगे। निस्तार नहीं है यही अच्छा है। किन्तु प्रताप। एक बार देखना यदि रक्षा का कोई उपाय हो क्या न देखोगे?

बादशाह कुछ देर नीरव रहने के बाद बोले—प्रताप के वीरत्व की मैं प्रसंशा करता हूं। किन्तु यदि उस सिंह को जाल में न फसा सका तो मेरा कौशल क्या उस दर्प को यदि चूर्ण न कर सकूं तो मेरा गौरव क्या। उस वीर को यदि अधीन न कर कर सकूं तो मेरा बल क्या। मेरे यह राजपूत योधा गण पृथ्वी को एक क्षुद्र गेंद के समान फेंक सकते हैं, क्या एक मनुष्य को नीचा न कर सकेंगे।

पृथ्वीराज ने नत मस्तक हो कहा—जहांपनाह। हारजीत में विधाता का हाथ है। बलवान प्रताप से वह नहीं पाया जाता बादशाह के साथ तुलना करने में प्रताप सिंह तो गणना में ही नहीं आ सकते। अबुलफजल जिनके मंत्री हैं, टोडरमल जिनके सचिव हैं, फैजी जिनके पार्श्वचर हैंमान सिंह जिनके

अनुनत है तथा महाबत खां बीरबल, सागरजी, शोभा सिंह इत्यादि वीर जिनके आश्रित हैं, जिनके प्रताप से भारत अवनत है उनके साथ क्षुद्र मेवाड़ के वन जन शून्य क्षुद्र प्रताप की किसी प्रकार तुलना नहीं हो सकती। किन्तु—,,

इसी समय एक कर्मचारी ने आकर कहा, जहांपना महाराज मानसिंह महल के द्वार तक आ गये हैं॥

बादशाह ने अतिशय संतोष पूर्वक कर्म्मचारी को विदा देकर पृथ्वीराज से पूछा,, किन्तु क्या। ,,

बादशाह छोटे हों या बड़े किसी से भी सलाह लेने में हिचकते न थे। और न अपने मतके विरुद्ध बात सुनने पर विरक्त ही होते थे। इसी लिये वे प्रताप संबन्धी बातो को पृथ्वीराज से बड़े आग्रह से पुछ रहे थे। बादशाह के प्रियपात्र खुशामदी नही होते थे। निः संकोच मन के अभिप्राय को सुनकर ही बादशाह सतुष्ट होता था। इसीलिये पृथ्वी राजने साहस कर कहा, प्रताप का प्रताप है, जब तक वह प्रताप रहेगा किसकी शक्ति हैं उनको विजित करे। इस दीन का यही विश्वास है, प्रतापसिंह कभी अधीन न होंगे। बादशाह की सब चेष्टाएं व्यर्थ होंगी।

बादशाह कुछ सोचने लगे। फिर उसी कर्म्मचारी ने आकर कहा—महाराज मानसिंह इसी ओर आ रहे हैं।

कर्मचारी विदा हुआ। नकीब चित्कार करने लगे अम्बर-राज पांचहजारी मन सबदार अतुल प्रतापी, बादशाह के अनुग्रह भाजन, राजपूत चूड़ामणि महाराज मानसिंह बहादुर उपस्थित हैं।

बादशाह उठ कर द्वार समीप गये और हंसते २ मानसिंह

को प्रवेश करने के लिये संकेत किया। मानसिंह ने भूमि स्पर्श कर सलाम करते हुए मंत्रणा गृह में प्रवेश किया। बादशाह ने मानसिंह का आलिंगन करते हुए कहा,-वीर तुम्हारा यश: सौरभ तुम्हारे आने से बहुत पहले मेरे पास आ गया था। हम इस समय तुम्हारे ही सम्बंध में बात चीत कर रहे थे।

मानसिंह ने हंसते २ कहा,-इस क्षुद्र व्यक्ति की आलोचना में जहांपनाह का कुछ समय बीता है इससे अधिक गौरव प्रशंसा तथा अनुग्रह की चीज मानसिंह के लिये और कुछ नहीं है।"

इसके बाद बादशाह ने सिंहासनासीन होकर मानसिंह को भी बैठने की आज्ञा दी। इसके बाद स्वास्थ वार्तालाप हुआ। फिर बादशाह ने हँसते हँसते कहा-किंतु हम तुम्हारी निन्दा कर रहे थे।"

मानसिंह—इस अधम का सौभाग्य नहीं है जो बादशाह की प्रशंसा का पात्र बने लेकिन निन्दा से हो या प्रशंसा से बादशाह ने उसे स्मरण तो किया है, यही दीन की सौभाग्य है।

अकबर—जो वीर हिन्दुस्थान को पदावनत करके भी तृप्त नहीं हुआ, जिसकी शक्ति ने सिन्धु नद को पार कर गमजोनगर को बलहीन कर दिया है उस वीर का अमित तेज यदि किसी स्थान विशेष में प्रतिष्ठित न होते तो अवश्य ही यह घटना उसके वीर चरित्र में सदा के लिये कलंक स्वरूप रह जायगी।

मानसिंह—जहाँपनाह की आज्ञा से ही यह दीन अग्नि की भयानक चिनगारियों में सो सकता है, समुद्र में कूद

सकता है, अकेले खाली हाथ शेर से लड़ सकता है। किन्तु यह दास नहीं जानता उसने कहाँ पर बादशाह की जय-पता का स्थापित करने की चेष्टा नहीं की।

बादशाह ने ईषत हास्य के साथ कहा,—"मेवाड़-प्रतापसिंह।"

मानसिंह काँप उठे। कुछ देर चुप रहने पर आसन त्याग उठ खड़े हुए। आँखे बिलकुल लाल होकर व हुक को निकली आ रही थी। क्रोध से उन्होंने कहा।

"प्रतापसिंह—दांभिक—प्रतापसिंह—दरिद्र, भिक्षुक, कुटीवासी प्रतापसिंह—इसने मुझे मर्माघात पहुँचाया है इसने मेरे हृदय में तीव्र विष फूँक दिया है। मैं इसका सर्वनाश करूँगा, मैं इसे राह का भिखारी बना दूंगा; मैं इसे बाँधकर बादशाह के चरणों के पास बैठा दूंगा, मैं इसे चरणदलित कर डाली दूंगा, तब मेरा क्रोध शान्त होगा। हृदय तृप्त होगा।

अकबर ने पूछा—प्रतापसिंह के ऊपर आज इतना क्रोध क्यों?"

मानसिंह ने एक एक करके सारा घटना कह सुनाई। बादशाह भी क्रोधित हुए, किन्तु वे अपने क्रोध को प्रकाशित करने वाले मनुष्य न थे। उनके परिचित राजपूत मंडली यदि उनके आधीन किसी राजपूत वीर के ऊपर क्रोधित होते तो बादशाह बड़े संतुष्ट होते। कारण उनका विश्वास था राजपूतों के आपस में फूट हो जाने भारत में यवन प्रताप का कोई भी प्रतिद्वन्दी न रह जायगा। किन्तु राजपूतों के एक होने से शत बादशाहों भी शक्ति नहीं कि भारत में एक दिन भी राज्य

करे। बादशाह ने समझा कि प्रतापसिंह के अतुल वीर और प्रतापशाली होने पर भी अब उनका निस्तार नहीं है क्योंकि इस समय स्वकलीय वीर मानसिंह उनका प्रबल शत्रु हुआ है। कर्त्तव्य—कर्म या प्रभु का संतोष साधन एक बात है और अपने हृदय की विजातीय ज्वाला निकालने की चेष्टा एक बात है। असाधारण प्रभुभक्त होने पर भी प्रतापसिंह के समान स्वजातीय के विरुद्ध तलवार उठाने की किसी राजपूत की प्रवृत्ति न होती किन्तु अब होगी। शक्तसिंह प्रभृति बान्धव भी प्रताप के विरोधी हैं अतः अब प्रताप का निस्तार कहां? यह सब बातें बादशाह समझ गये थे।

इतने में फिर नकीबों की चिल्कार सुनाई दी, "शाहजादा सलीम हाजिर हैं" सलीम ने मुगलगृह में प्रवेश किया। उसकी भुवन मोहन कान्ति है। उसके कपड़े बहुत सुन्दर और सुहावने हैं। उसके शिर में भांति भांति का जड़ाऊ काम किया हुआ सिरपेच चमक रहा है। उसके विशाल वक्ष में सुन्दर मोतियों की माला सुहा रही है। उसके बड़े बड़े दृष्टी और भवरों से तेज और बुद्धि की ज्योति निकल रही थी। किन्तु बुद्धिमान देख सकेंगे कि शाहजादे सलीम की उस अपूर्व लावण्य की शोभा में भोगविलासानुराग तथा स्वास्थ्य संबंधी नियमों की अवहेलना की छाया पड़ रही है। शाहजादे ने प्रवेश कर बादशाह के समीप घुटने टेके और बादशाह के चरणों को हाथ से छूकर उसे हाथ अपने मस्तक में लगाया। बादशाह ने अत्यंत स्नेह से उस युवक का आलिङ्गन किया। मानसिंह और पृथ्वीराज ने शाहजादे के लिये यथाविधि अपना सद्भाव प्रदर्शित किया। इसके बाद सबके बैठ जाने पर बादशाह

ने कहा,—' सलीम। तुम सर्वदा किसी गुरुतर युद्ध कार्य में नियुक्त न किये जाने के कारण दुःख प्रकाश करते थे। आज तुम्हें एक युद्ध का देना मैंने स्थिर किया है। उस युद्ध के जय पराजय के साथ तुम्हारे भविष्य की उन्नति का प्रबंध होगा।

सलीम—कोई भी विषय में होवें इस दास के जय लाभ में क्या संशय है ? बादशाह का आशीर्वाद ही दास का बल है। जब तक उस आशीर्वाद में इस देर की अविचल भक्ति रहेगी तब तक यह दास कभी भयग्रस्थ न हो सकेगा। इस समय बादशाह ने मुझे कौन सा कार्य भार देकर अनुगृहीत किया है क्या उसे जानने की मैं इच्छा कर सकता हूं ?

अकबर—राजामान। तुम जब प्रसद्ध यात्रा करोगे उस सलीम को साथ ले जाना और सलीम। तुम तय्यार हो थे। राजा मान के साथ तुम्हे इस वार मेवाड़ के प्रतापसिंह के विरुद्ध युद्ध करने को जाना होगा।

सलीम-दास सर्वदा सम्राट के कार्य के लिये प्रस्तुत है। आज्ञा होने पर इसी क्षण जा सकता हूं।

मानसिंह—बादशाह की आज्ञा से परम संतुष्ट हुआ किन्तु कब जाना होगा इसके संबंध में बादशाह ने कुछ भी नहीं कहा।

बादशाह कुछ क्षण सोच कर बोले, " नुशरोग पर्व समीप है उसी के बाद यात्रा करना मेरी समझ में युक्तिसंगत होगा। तुम्हारी क्या राय है ?"

मानसिंह —यही स्थिर रहा।

इसके बाद एक एक कर पृथ्वीराज और मानसिंह यथोचित रीति से बादशाह के निकट से बिदा हुये। उनके जाने के बाद पिता और पुत्र इधर उधर की बातें करने लगे।

# एकादश परिच्छेद।

## धात्री भूपति।

हमने इससे पहले के परिच्छेद में शाहजादा सलीम का जो चित्र देखा वह अवश्य ही उसी प्रकार स्पष्ट रूप से चित्रित नहीं हो सकता। उसके चरित्र के दो भाव थे एक भाव से दोनों में वह नरक का प्रेत था। दूसरे भाव से वह पूर्ण और भक्ति की सामग्री थी। उसके हृदय में जिस प्रकार अति महत्त अपार्थिव मनोवृत्तियाँ थीं उसी प्रकार अति जघन्य इन्द्रियपरता, पाशविकता और नीचता भी उसमें थी। जब वह दरबार में रहता था तब वह अबुल फजल के समान बुद्धिमान और मानसिंह के समान साहसी मालूम देता था, और जब वह विलास-गृह में बैठता तो उसकी नीचता और अदूरदर्शिता का पराकाष्ठ देखा जाता। जब वह राजकार्यों की मन्त्रणा में नियुक्त रहता था तो कभी कभी चतुर चूड़ामणि अकबर भी मनही मन उससे हार मानते थे, और जब वह भ्रष्टमति खुशामदी पारिषदों के बीच में रहता तो वह बिलकुल अबोध मूर्ख मालूम पड़ता था किन्तु सब गुण दोष एकत्रित करने से जान पड़ता है सलीम में गुणही अधिक थे। इसकी शांत स्वभाव मिष्टभाषण, सरलता, सहिष्णुता, बुद्धि इत्यादि असंख्य सद्गुण एकत्र कर तराजू में एक ओर रखने से और अवगुण दूसरी ओर रखने से गुणवाला पल्ला ही नीचे को झुक जाता था।

अति सुसज्जित संगमर्मर के एक मनोहर कमरे में संध्या के

बादशाहजादा सलीम बैठे हैं। खुशामदी, चरित्रहीन पारिषदगण उनको घेरे हैं। चारों ओर अनेक स्फटिक दीपाधारों में अनगिनती दीपक मालायें जल रही हैं। अपूर्व गंधद्रव्य कमरे में जल कर सुगंधित बना रहा है। दो अप्सरा सदृशी रूपसी नर्तकी मनोहर वस्त्राभूषणों से अपनी पाप काया को विभूषित कर अंगभंगी सहित नृत्य-गान द्वारा अनियमी, अदूरदर्शी युवक श्रोताओं की इन्द्रिय--तृष्णा को बलवती कर रही हैं। कभी कभी उनके अपेक्षा भरे विशाल लोचन मुकुलित हो जाते हैं कभी कभी उनमें से नागिन का तीव्र विष निकलकर दर्शकगणोंको चैतन्य कर रहा है, कभी कभी उनमें से प्रणय की स्निग्ध सुधा निस्तृत होकर सबको विकल कर रही है कभी उनके कटाक्ष की बिजली उनको मर्माघात पहुंचा रही है। इस ओर ममता से भी उन युवकों की तृप्ति नहीं स्वर्ण पात्र की सिराजसे आई हुई उज्ज्वल सुरा उनकी स्थिर बुद्धि को और चंचल कर रही है। सलीम इस प्रकार विकृत संसर्ग में खूब सुरापान कर रहा है। रूपोन्मत्त और मदोन्मत्त होकर चीत्कार छोड़ रहा है।

कौन कहता है मनुष्य सबसे बुद्धिमान जीव हैं। यदि मनुष्य बुद्धिमान हैं तो अबोध कौन है! संसार में कौन जीव इस प्रकार अपनी इच्छा से अपने पैर में कुल्हाड़ी मारता है! कौन जीव मनुष्य के समान निरंतर प्रकृति के नियमों को तोड़ कर अपने स्वास्थ्य और सुखको ध्वंस करता है? कौनप्राणी अपनी इच्छा से आयु को छोड़ कर अकाल में ही कालसमुद्र में डूब जाता है? मनुष्य के समान भ्रमपरायण जीव और कहां है? मनुष्य की स्वाधीन बुद्धि ही उसकी उन्नति और अवनति का कारण है।

[illegible]

नर्तकी क्रीड़ा और लालसा सूचक भावभंगी से नाचती और गाती थी। दो गान शेष होने पर तीसरा गान आरंभ हुआ—

आवो आवो छैला मैं मदवा पिला दूँ।
आवो आवो सैय्याँ मैं मदवा पिला दूँ॥

सलीम ने चीत्कार स्वर में कहा,—'ठीक, ठीक, बहुत अच्छा शराब! शराब!!

एक आदमीने शीघ्र ही एक पात्र में उसे शराब दी। सलीम ने पीया। गायिका ने फिर गाया—

चैन पावे जिया, मेरे प्यारे प्रिया, तोहे मन में बैठादूं।
बलि बलि जाउं, सजन बनाउं आवो आवो छैला०॥

उन भ्रष्टमति युवको ने एक साथ प्रशंसासूचक शब्दों की ऐसी झड़ी लगादी कि एक विकट ध्वनि हो उठी। उससमय सलीम एक रमणीकी बदन शोभाको देखते देखते ऐसा मोहित हो रहाथा कि उसके हाथ से सुरापात्र गिर गया, उसे उसकी खबर भी न हुई।

गायिका गा रही थी—

मय का पीना है नेक करीना, चार दिन जमाने में जीना।
सांचो बतियां मैं तोहे बताऊं॥ आओआओ छैला०॥

फिर वही चित्कार-ध्वनि सलीम चिल्ला उठा—'ठीक ठीक बहुत ठीक॥

गायिका फिर गाने लगा—

आब ताब का शराब है शीशे का प्याला साफ।
मैं निरमल साकी बन पाने वाला साफ॥
आओ आओ छैला मैं मदवा पिलाऊं॥

सब सलीम—मैं, मैं-यह मैं हूं., कहकर गिरते गिरते उठा और एक गायिका का हाथ पकड़ उसका मुंह चुम्बन किया सब"हो हो"कहकर हंस उठे। सलीम हिता हित शून्य बोध रहित बेहोश सा हो रहाथा। हठात् एक आदमी ने आकर समवाद दिया, बादशाह बहादुर और महाराज मानसिंह शाहजादा को याद कर रहे हैं।,,

सलीम ने रमणी का हाथ छोड़ दिया। अवलंब हीन होके से धड़ाम से गिरपड़ा, साथी एक एक कर चले गये।

सलीमने उस भृत्य से कहा,-"जा! दिन रात याद करनेसे भी कुछ न होगा, जाकर कहो मैं इस समय नहीं आसकूंगा

फिर शीघ्र कहने लगा,—"नहीं, नहीं, जाकर कहो मैं आता हूँ तुम जाओ मैं अभी आता हूं॥

तीन बार शाहजादे ने उठने के लिये प्रयत्न किया, किन्तु कृतकार्य न हुआ। अंत में लाचार होकर भारत का भावी भूपति शराब के नशे में यदृच्छ चिन्ता और अशोक ध्यान करते करते वहीं पड़ा रहा।

## द्वादश परिच्छेद।

### राज-राज मोहिनी।

आगरा में यमुना के तीरस्थ एक परिच्छन्न क्षुद्र भवन के एक कमरे में दो युवतियां बातें कर रही हैं। उनमें से जो युवती अद्वितीय सुन्दरी है, जिसके लावण्य से वह गृह उज्वल हो रहा है, जिसके दर्शन मात्र से अपसरा का भ्रम होकर मोहित और चकित होना पड़ता है तथा जिसको वर्ण, गठन, शिक्षा कमनीयता भाव भंगी सब अमानुषी और अपार्थिव है

यही सुंदरी मेहरउन्निसा है, दूसरी उसकी सहचरी कामिनी है मेहरउन्निसा की अवस्था सोलह वर्ष से अधिक न होगी उसका सौन्दर्य और शिक्षा भुवन विख्यात है। हम कहीं उस रमणी-कुल ललाम मेहरउन्निसा के सौन्दर्य वर्णन करने में हास्य पद न हो जावे। कहते हैं विधाताने किसी चीज को सर्वथा दोषशून्य नहीं बनाया है, गुलाब में कण्टक है, चन्द्रमा में कलंक है, मोर के पाँव उसकी देह के सर्वत्र अनुपयुक्त हैं किंतु मेहरउन्निसा में कुछ दोष नहीं है। उसकी देह कार्य और स्वभाव में कहीं भी तिलांश कसर नहीं है,

राजराजमोहनी मेहरउन्निसा के सभी काम सुरुचि के परिचय देनेवाले हैं। उसके कपड़े, गृहसज्जा इत्यादि उसके साक्षी हैं। मेहरउन्निसा के पिता धनी नहीं हैं इस लिये गृहस्थ की शोभा के लिये महामूल्य द्रव्यों को खरीदना उनके सामर्थ के के बाहर है किंतु जिस घरमें मेहरउन्निसा का जन्म हुआ है उस घरको और शोभा कि क्या आवश्यकता है। मेहरउन्निसा ने मामुली चीजों से घर द्वार, छोटा सा उद्यान इत्यादि इस प्रकार सजाया है कि वे दर्शनमात्र से ही चित्त को खींच लेते हैं। मेहरउन्निसाके वस्त्र मामुली होने पर भी इस प्रकारके हैं कि बेशकीमती मालूम देते हैं। मेहरउन्निसा ने अपनी सखी से कहा, "कामिनि क्या तू मुझे इतना असार और अपदार्थ समझती है, तू क्या सोचती है मेरा हृदय इतना कलुषित है प्रणय ही मनुष्य-हृदय की उच्चता का निदर्शन है। उस पवित्र वृत्ति को छोड़ कर क्या मैं पशु-वृत्तिका अनुसरण करूँगी।

कामिनी कुछ सोचकर कहने लगी-" मेहरउन्निसे! जरा सोचो तो सही तुम क्या हो जाओगी। मैं पथका भिक्षुक, तुम्ह

यश आदि संसार में मनुष्य को जितनी प्रार्थनीय वस्तु हैं शाह आदा सलीम के पास किसी की कमी नहीं है। उन समस्त दुर्लभ सुखों की स्वामिनी बनना क्या सामान्य भाग्यकी बात है ? मेहरउन्निसा ज़रा सोचो तो सही।"

मेहरउन्निसा ने विषाद व्यंजक हंसी हंस कर कहा,—"आमिनि। मैं तेरे प्रस्तावित जीवन के प्रधान प्रार्थनीय सुख के साथ अपने हृदय के अतुल सुख का विनिमय करना नहीं चाहती सिर्फ अमूल्य निधि प्रेम को ही मैं चाहती हूं। यदि वह दरिद्री के पास मिले तो वही श्रेष्ठ है।

आमिनी—तुम जो चाहती हो उसे कौन न पायेगी शाह आदा सलीम तुम्हें प्राणों से भी अधिक चाहते हैं। नहीं जानता, वे तुम्हारे लिये प्रायः पागल हो गये हैं,

मेहरउन्निसा ने कुछ लज्जित होकर कहा,—" मैं भी सलीम के रूप और पदकी प्रशंसा नहीं करती हूं, ऐसा नहीं है। मैंने तो उनके समान सुन्दर पुरुष संसारमें और कोई देखाही नहीं।"

मेहरउन्निसा कुछ देर किसी दूसरे विचार में डूब कर नीरव रही, फिर कहने लगी:—किन्तु वे मुझपर प्रेम नहीं करते, उनके हृदय में प्रेमही नहीं है, कभी उनके हृदय में प्रेम का अंकुर होगा वैसा भी मेरा विश्वास नहीं है: वे मेरे लिये प्रायः उन्मत्त हो गये हैं यह भी असंभव नहीं है। किन्तु स्वर्गीय प्रेम इस उन्मत्तता का कारण नहीं है, इसका कारण है, घृणित भोगानुरक्ति आमिनि संसार में जितना कष्ट है मैं सब हंसते हंसते सह सकती तथापि मैं स्वर्गीय सुख होने पर भी नारकी हृदय के साथ न रह सकूंगी। अतएव शाहजादे का प्रस्ताव मुझे पसंद नहीं।

आमिना ने फिर कहा,—"तुम समझती नहीं हो शाह-ज़ादा तुमसे विवाह करेंगे। विवाहिता स्त्री पर प्रेम न करेंगे यह असंभव है और सुनो सलीम ही भविष्य में बादशाह होंगे तब तुम कितनी सुखी हो जाओगी।

मेहरुन्निसा—निःसंदेह सलीम ही बादशाह होंगे, उनके समान रूपवान और अत्युत्तम पुरुष का भार्या होने की किसको इच्छा न होगी? किंतु जब मैं सोचती हूं सलीम-रूप भोग की लालसा से ही मेरे लिये उन्मत्त हैं तो मैं संभल जाती हूं। तब मैं सोचती हूं, अगर हृदय न पाया तो सिंहासन, धन, संपत्ति व्यर्थ है। तब मैं स्थिर करती हूं कि प्राण आ.वे स्वीकार है परन्तु मैं पद-गौरव से मोहित होकर कलुषित प्रेम के लिये सलीम के हाथ अपनी देह का विक्रय न करूंगी।

सुन्दरी नीरव हुई। कुछ देर बाद फिर बोली "सलीम मुझसे विवाह करेगा यह ठीक है, किन्तु विवाह करने से ही स्त्री पर प्रेम करना होता है-यह बादशाहों के शास्त्र में लिखा नहीं है। मनुष्यों के किसी समाज में भी ऐसी बाध्य बाधा नहीं है। सुन, पिता ने शेर अफ़गान के साथ मेरा संबन्ध स्थिर किया है। उसमें मेरी भी सम्मति है अतः धर्म से मैं उसी की हो चुकी। यदि अब मैं सलीम को वरूं तो पिता को अपमानित होना पड़ेगा, मैं धर्मपतित हो जाऊंगी। लाभ कुछ न होगा सुवर्णपिंजराबद्ध पक्षी के समान मुझे आजीवन दुःख भोगना होगा,जिस काम में इतने अनर्थ पात की संभावना है वह क्यों करूंगी। शेरशाह सलीम के समान अत्युन्नत पदाधिकारी नहीं है यह ठीक है किंतु उनमें सलीम से विशेष अधिक गुण हैं। सलीम को विधाता ने जो पद अत्युच्च संपत्ति और अनुल-

नीय रूपराशि दी है वह अवश्य ही नारीहृदय को लुभानेवाले हैं। मेरे हृदय में वह लोभ न हुआ ऐसा नहीं है। किंतु मैं उस का दमन करना जानती हूं, मैं भला बुरा समझती हूं मेरा हृदय इतना अबोध नही है कि मैं पवित्र सुखके बदले में अपवित्र सुख ग्रहण करूं, स्वर्गीय आनन्द देकर घृणित वस्तु खरीदूं तथा सुवर्ण के बदले पीतल लूं।,,

आमिना—पुत्र के लिये यदि सम्राट अकबर तुम्हारे पिता से अनुरोध करे तो वह अवश्य तुम्हारा विवाह सलीम के साथ करदेंगे। तब क्या होगा ?

मेहरउन्निसा ने हंस कर कहा – 'इसके लिये मैं निश्चिन्त हूं। अकबर के समान न्यायपरायण बादशाह अब वाग्दत्ता कन्या का विवाह दूसरी जगह कराने को कहेगा यह असंभव है और पिता स्वीकार कर उस विवाह-संबंध को तोड़ें वह भी असंभव है।'

आमिनी-तुमसे अधिक बुद्धिमान और कोई नहीं है। अपना भला बुरा जितना तुम सोच सकती हो उतना दूसरा नहीं सोच सकता। किंतु देखना बहिन, इसका दुःखद परिणाम न होवे।

मेहरउन्निसा ने अपने सुगोल नवनीतविनिन्दित कमनीय हाथों को ऊपर उठाया और प्रेमाश्रुपूर्ण मृग-नयनों से ऊपर की ओर दृष्टिपात कर कहा,–"उसकी इच्छा।"

आमिनी चली गई, जगद्विख्यात सुन्दरी मेहरुन्निसा वहीं बैठे २ अपने भविष्य की भावनाओं में डूब गई।

# त्रयोदश परिच्छेद ।

## हृदय का विनिमय ।

चुम्बक जिस प्रकार लोहे को खींचता है उसी प्रकार एक हृदय भी दूसरे को खींचता है, वैज्ञानिकों ने स्थिर किया है कि तड़ित शक्ति विशेष के सहयोग से चुम्बक में आकर्षण शक्ति पैदा होती है, चुम्बक वस्तुतः लोहा विशेष है। हृदय के संबन्ध में भी वही बात है। इस संसार में भी हृदयों का आकर्षण है, किंतु कितने कितनों के लिये मरते वा जीते हैं। कितने कितनों को हंसाते वा रुलाते हैं ? हाय ! इस संसार में कौन किसकी चिंता करता है सब हृदय यदि दूसरे को चाहते, सब यदि सबकी चिंता करते तो मनुष्यों देवता हो जाते, संसार स्वर्ग हो जाता । सब मनुष्य एक होना सीखकर सारी मंत्रणा तथा ज्वालाओं को दूर कर सकता, किंतु ऐसा नहीं होता—सब सब को नहीं चाहते। एक हृदय से निकली हुए पवित्र तड़ित—स्पर्श से यदि दूसरा हृदय आलोकित हो तो, वे दोनों परस्पर आकर्षण—सूत्र में गुंथ जाते हैं। उसी को लोग प्रेम, प्रणय, स्नेह, ममता इत्यादि कहते हैं, वस्तुतः सब एक ही प्रकार की वृत्ति है—सब हृदय का आकर्षण मात्र है। स्वार्थत्याग इसका कार्य है। इस स्वार्थ त्याग से अधिक पवित्र और महत् कार्य उस छोटे मनुष्य—जीवन में और कुछ नहीं है। इस क्षण भंगुर जीवन में जिन्होंने जितना अधिक स्वार्थ त्याग किया वे उतने आजिनयवश्र हो युगा युगान्तर के लिये मनुष्यके हृदयों के द्वारा देवताओं सदृश पूजे जाते हैं। जिन्होंने समरक्षेत्र में देश स्वाधीनता के लिये प्राण दिये हैं,

जिन्होंने अज्ञ लोगों के भ्रमभंजनार्थ निरन्तर शरीरपात कर कर्त्तव्य कर्म—पालन का परिचय दिया है, जो दुःखी मानव के विपद् उद्धारार्थ अपना सुख भूल गये, वे सब स्वार्थत्याग के ही वीर थे व सब व्यक्ति साधारण के दुःख दुरवस्था और को देखकर दुःखी हुए थे। यह ऐसे देवताओं का नाम कभी नहीं मिट सकता। जो स्वार्थ त्याग की महिमा नहीं जानता उसका हृदय पत्थर का बना है वह मनुष्य नाम के अयोग्य है स्वार्थ त्याग ही धर्म की मूल वृत्ति है, समाज संस्थिति का आधार है। बिना प्रेम के स्वार्थत्याग नहीं हो सकता। पिता पुत्र के ऊपर प्रेम करता है इसलिये पुत्रके सन्तोष के लिये वह अपना सुख नहीं देखता जननी ममता के वश होकर आप भूखी रहकर संतान को खिलाती है। महात्मा बुद्ध देव प्राणी मात्र के प्रेम में मुग्ध थे इसीलिये राजपाट छोड़ने से तनिक न हिचके सुकरात सत्य के प्रेम में पागल थे इसीलिये जीवन तक के देने में कातर नहीं हुआ महाराणा प्रताप देश प्रेम में मत्त थे इसीलिये वन वन भटकने में कुछ भी चिंतित न हुए, चैतन्य-देवने प्रेमका तत्व समझा था इसीलिये और किसी सुख ने उनके हृदय में स्थान न पाया। राममोहन धर्म प्रेम में मुग्ध थे इसीलिये किसी समाजिक क्लेश को उन्होंने क्लेश न समझा। यह सब प्रेम के लिये स्वार्थ त्याग की घटनाएँ हैं, अतएव सब धर्मों का मूल प्रेम अर्थात् स्वार्थत्याग। जो धर्म प्रेम के पथ को छुड़ा कर दूसरे उपाय से मुक्ति का पथ दिखाता है, वह पशुओं का धर्म है—वह मनुष्य के ग्रहण करने योग्य नहीं। प्रेम में ही मनुष्य की मुक्ति है, प्रेम में ही उन्नति है, प्रेम में ही विकास है, प्रेम में ही आनन्द है तथा

प्रेम में ही चरमोत्कर्ष है। औरों की बात छोड़िये, एक दूसरे के लिये मर सकता है, दूसरे की हंसी देख कर अपने सब दुख भूल जाता है, दूसरे की यातना देखकर उससे भी अधिक कातर हो जाता है. दूसरे कि विपत्ति देखकर उससे भी अधिक विपन्न हो जाता है, उससे अधिक पवित्र. स्वर्गीय, उदार तथा देवताओं का भाव हमें और कहीं नहीं दिखायी देता। मनुष्य समाज जितना प्रेम का आदर करना सीखेगा, प्रेमिकों की जितनी अर्चना करना सीखेगा, उतनाही संसार स्वर्ग हो जायगा, उतनाही मनुष्य अनंत प्रेम में निमग्न हो जरामृत्यु भूल जायेंगे। यह प्रेम समभाव से नरनारी के हृदय में उत्पन्न हो सकता है। किंतु मानव जातिका हृदय इतना कलुषित और घृणित है कि वहुतसे नरनारी के प्रेमको समझही नहीं सकते हैं तथा उसे लज्जाको बात कहते हैं। उनके क्षुद्र हृदय को धिक्कार है! नरनारी के प्रेम में स्वतः जीवकी स्थिति और रक्षा के लिये तथा ब्रह्मा का साक्षात् अभिप्राय संगतजो पवित्र संबंधविशेष उत्पन्न होता है उसे तुम नानाप्रकारके सामाजिक कारणों से लज्जा के आवरण से ढक सकते हो; किंतु वह प्रेम अगर चपल लिप्सा के कारण न हो तो उसमें लज्जा कौनसी है? यह दुर्बल हृदयताका चिन्ह है? यह क्षुद्र मनुष्यों के लिये है? जिसका ऐसा नीच विश्वास है, यह समाज का प्रबल शत्रु है. उसे सर्प समझ भय करो। क्या प्रेम किसी दशा विशेष में लज्जा की बात है? प्रेम लज्जा है, इसे सुनते ही कानो में अंगुली डालकर उस दार्शनिक के सम्मुख से भागो यदि इस पाप-ताप-पूर्ण पृथ्वी में कुछ भी पवित्रता है तो वह इसी हृदय के विनिमय में है

जहाँ प्रेमीने तुम्हारे हमारे समान पापकी कथा से अलग हो, चंद्रमा का सुधापान और 'कंटक'हीन पुष्पों की सुरभि में शयन करना सीखा है। वह प्रेमिक-कोई भी हो- पूजनीय है। वह पापी नहीं है; दुष्कर्म उसकी भावना में भी नहीं आ सकता। इतना उदार प्रेम—नरनारी जिसके आश्रित होते हैं, वह लज्जा की बात है ? छीः छीः !

हमने उस दिन जब रत्नसिंह को देवलवर नगर में देखा था तो समझा था शायद यमुना और रत्नसिंह ने परस्पर एक दूसरे के ऊपर अपने प्राण निछावर किये हैं। यह सच है, क्योंकि इसके बाद रत्नसिंह तीन दिन फिर अकारण ही देवलवर भवन में अतिथि बने। वृद्ध राजा तीनों दिन वहीं थे और उन्होंने पुत्र के समान रत्नसिंह का आदर किया। कुमारी यमुनाने भी उनके साथ आवेशामूल सरल भाव से आलाप कर उन्हें अतिशय आनंद दिया था। तीसरी बार जब रत्नसिंह वहां से विदा होते थे वह अपनी तलवार वहीं भूल गये और फिर आधे रास्ते से लौटकर उसे ले गये। कोई कोई कहते हैं वे जाते समय बार बार रास्ता भूल गये थे। कुमारी यमुना ने भी उस दिन शारीरिक अस्वस्थता का बहाना कर न कुछ खा सकी न किसी से अच्छी तरह बोलही सकी। इसी कारण हमने अनुमान किया कि इन दोनों ने एक दूसरे पर अपने अपने प्राण निछावर किये हैं। यह सत्य प्रेम है या असत्य इसे हम शीघ्र ही जान सकेंगे। यदि सत्य हो तो देखें यह युगल प्रेमिकों की स्वर्णकांति स्वार्थत्याग की अग्नि में कितनी उज्ज्वल होती है। इसीलिये हमने वर्तमान परिच्छेद में इसी प्रसंग को लिया है।

यहां पर जानना उचित है कि देवलवर राज ने बहुत दिनों से रतनसिंह के साथ यमुना का विवाह करना स्थिर किया है। इसमें यमुना की क्या सम्मति है यह जानने के लिये उन्होंने कुसुम को नियुक्त किया। कुसुम उसके मन का भाव जानती ही थी अतः पूछने के बदले उसके अनुराग की बात ही कहना ठीक समझा उसने उनकी अनुराग की कथा देवलराज से कहदी। वृद्धराज के मुखसे यह बात सुनकर वह आनंदित हो उठी, उसने शीघ्र ही कुमारा से कहा कि कुमार रतनसिंह का विवाह उसके साथ स्थिर हो गया है, शीघ्र ही वह शुभकर्म पूर्ण होगा। देवलवर राज ने भी कुसुम से यमुना के मनका भाव जानकर महाराना प्रतापसिंह से सब कुछ निवेदन किया। महाराना ने भी अत्यन्त हर्ष से इसमें सम्मति दी, विवाह संबंध दोनों ओर से एक प्रकार स्थिर ही हो गया। मुसलमानो से विरोध का अंत होने पर--यह शुभकर्म होना निश्चित हुआ।

युगल प्रणयी घोर उत्कंठा में डूबने लगे, क्योंकि दोनों एक दूसरे के भावको जानते थे। कुमार सोचते थे यमुना के साथ विवाह होने पर सुख की सीमा तो न रहेगी किंतु यमुना के हृदय का क्या भाव है? यदि किसी दूसरे भाग्यवान व्यक्ति को यमुना प्यार करती है तो सब विडम्बना है। अतः बिना भली प्रकार समझे मैं इसमें सम्मति न दूंगा। महाराणा के चरण पकड़ कर कहूंगा मैं अतुलनीय कुमारा यमुना के साथ उसकी अनिच्छा से विवाह कर उसे विषाद-समुद्र में डुबाना नहीं चाहता।' कुमारी के मन का भाव भी ठीक उसी प्रकार था। इस विवाह संबंध में लोग जो कुछ सोचें

किन्तु पात्र और पात्री अपने अपने मन में सुख--दुख की कितनी ही मूर्त्तियां बनाते और तोड़ते जाते थे। दोनों सोचते हैं कभी सुयोग पाने पर एक दूसरे के मन का भाव जाने।

शीघ्र ही वह सुयोग उपस्थित हुआ। देवलवर नगर के निकट चिन्द्रिनेश्वरी देवी की सेवा में कुछ त्रुटि होने का समाचार महाराना ने सुना। उसकी खोज का भार उन्होंने रत्नसिंह को सौंपा। इसी के लिये कुमार रत्नसिंह को चार दिन देवलवर राज-भवन में ही रहना पड़ा। इस चार दिन की अवधि में यमुना और रत्नसिंह ने नाना विधि एक दूसरे के हृदय के भाव को पहिचाना। क्या पहिचाना? यही? पहचाना कि एक दूसरे को जितना प्यार करता है वह शायद दूसरे के प्रेम के बराबर नहीं है। यह संदेह जिस प्रेम में है वही प्रेम अकृत्रिम भाव से और अपरिमित परिमाण सी है अतएव इन दोनों हृदयों का शुभ विनिमय हुआ।

## चतुर्दशपरिच्छेद।

### मंत्रणा।

दिन के प्रथम पहर में शैलम्बर नगर के एक निभृत राज-प्रकोष्ठ में शैलम्बरराज और कुमार अमरसिंह बैठे हैं। जो जो राजपूत--कुल-भूषण स्वदेश की स्वाधीनता के लिये व्यस्त थे अब उन्होंने यवनों के उदयपुर--आक्रमण की बात सुनी तो आहार, निद्रा और भोगविलास को भूल कर युद्ध की तैयारी करने लगे। शैलम्बरराज महाराज के प्रधान कुटुम्बी थे। इस वीरवंश में महाराना की अत्यन्त

विपत्ति में आगे होकर सहायता की थी तथा आवश्यकता होने पर प्राण भी विसर्जित किये थे, आज भी शैलम्बरराज चिंताकुल हैं, वे समय समय महाराना के पास जाकर परामर्श करते थे। महाराना के साथ भेंट करने जब वे हाल में गये थे तो किसी गूढ़ कारण से अमरसिंह को अपने साथ ले आये। कुमार की भी आने की इच्छा थी—परंतु अपनी इच्छा से जाने की अपेक्षा दूसरे की इच्छा द्वारा जाना अधिक सुविधाजनक हुआ।

शैलम्बरराज प्रतापसिंह से अवस्था में बड़े थे, इसलिये कुमारगण उनको पिता के समान सम्मान देते थे। शैलम्बरराज पुत्रहीन थे। बालकाल से ही अमरसिंह सदा शैलम्बर राजभवन में आते जाते थे। शैलम्बरराज और उनकी रानी पुष्पवती कुमार के ऊपर सभी से पुत्रवत स्नेह करते थे। आज कुमार के बहुत दिन बाद जाने पर सभी अत्यंत आनंदित हुए हैं। अंतःपुर में रानी कुमार के सत्कार के लिये नानाप्रकार की तय्यारी में लिप्त हुई। शैलम्बरराज ने कुमार से पूछा;— " अमर! तुम्हारी समझ में क्या आता है? क्या मेवाड़ की जय की आशा नहीं?"

अमरसिंह- मेवाड़ की जय की आशा नहीं, यह कैसे कहूं। जिस मेवाड़ ने स्वप्न में भी किसी की अधीनता स्वीकार नहीं की क्या आज उस मेवाड़ का अधःपतन हो गया है! नहीं, नहीं यह मेरा विश्वास नहीं है।

शैलम्बरराज—वत्स, अकबर का उद्यम साधारण नहीं है। कुलांगार मानसिंह स्वयं आवेगा।

अमरसिंह—आर्य, क्या आप समझते हैं हम लोगों का इतना प्रयत्न व्यर्थ होगा। यह सत्य है अनेक राजपूत स्वदेश गौरव त्याग कर अकबर की पदसेवा में रत हुए हैं, फिर भी क्या हम इतने बलवान नहीं हैं जो हम यवनों को मरुभूमि पार करने दें?

शैलम्बरराज—अमर, मेरा विश्वास है यवन हमारा कुछ नहीं कर सकते किंतु भय है स्वजाति—शत्रुओं का। मानसिंह, सागरजी इत्यादि राजपूत-कुल-कलंक बिभीषण गण हमारे युद्ध का ढंग, बल, उपाय सब कुछ जानते हैं। इसपरभी मानसिंह महाराना द्वारा घोर अपमानित हुआ है। इसीलिये इस बार भयंकर युद्ध होगा।

अमर—आपका कहना ठीक है, किंतु क्या हम लोग कोई ऐसे उपाय नहीं सोच सकते जिससे शत्रु की बुद्धि और बल पराभूत होने की संभावना हो?

शैलम्बरराज कुछ देर सोच कर कहने लगे,—"हमारी सेना कितनी ही हो शत्रुसेना से कम ही होगी इसमें संदेह नहीं। किंतु वही अल्प सेना सुकौशल पूर्वक ठीक स्थान में रखने से अधिक कार्य की संभावना है।"

अमर—आपका परामर्श बहुत ठीक है, कौन स्थान ठीक होगा!

फिर कुछ देर सोचने के बाद शैलम्बरराज बोले—"हल्दी-घाटी ही सबसे उचित जगह जान पड़ती है, क्योंकि यवनों के उसी पथ से होकर मेवाड़ आने की संभावना है। अतएव उसी पथ को बंद करदेने से यवनों के भय की आशंका न रहेगी।"

अमर—आपने बहुत ही उत्तम स्थिर किया है, निश्चय ही यवनों को हल्दी घाटी छोड़ कर और किसी मार्ग से मेवाड़-प्रवेश करने में सुविधा न होगी। अतएव उसी पथ को बंद करना सत्परामर्श है। एक बात और हल्दी घाटी के लिये जितने सैन्यबल की आवश्यकता है और स्थानों के लिये उससे अधिक होगी।

शैलम्बरराज—तुम मुझसे पहले राजधानी जाकर महाराना से यह कहो, इसके बाद में भी कहूँगा। फिर सैन्य-संग्रह होगा। मेरे आधीन पाँच हजार सेना जाकर महाराणा की ध्वजा के नीचे खड़ी होगी। यदि तुम चार पाँच दिन यहाँ और रह सकते तो सैन्य संख्या दुगनी हो जायगी। क्योंकि अब प्रजा को मालूम होगा तुम सैन्यसंग्रह के लिये आये हो तो रोगी-दुर्बल, नर-नारी, वृद्ध-युवा उत्साह से उन्मत्त होकर अपने अपने धन-प्राण जगत्पूज्य महाराणा के चरणों में अर्पण करने को वे आवेंगे।

अमर—जो आज्ञा, मेरे यहाँ चार पाँच दिन और रहने से यदि अधिक उपकार की सम्भावना हो तो ऐसा ही करिये किंतु, आर्य! देखियेगा कहीं रोगी और दुर्बल राजभक्ति के उत्साह से उन्मत्त होकर अधिक दुख न पावें।

इसी समय एक परिचारिका ने आकर कहा—"कुमार का आगमन सुनकर रानी उनसे भेंट करने को अत्यन्त उत्सुक है। अतएव यदि यहां अब कुमार का कुछ कार्य न हो तो वे अंदर पधारें।"

अमरसिंह ने सम्मति के लिये शैलम्बरराज की ओर देखा उनका सम्मति सूचक इशारा पाकर कुमार ने परिचारिका के साथ अंतःपुर में प्रवेश किया।

# पंचदश परिच्छेद ।

## देवी—वाक्य

संध्या समय देवलवर राजकन्या यमना दो पक्षियों को लेकर खेल रही है। कभी उनका मुख चूमती है, कभी उनको मस्तक में रखती है, कभी उनको छोड़ देती है तो वे उड़कर फिर उसी के कंधों में बैठ जाते हैं, राजकुमारी पक्षियों के साथ क्रीड़ा में मग्न थी उसी समय कुसुम ने हँसते हँसते आकर कहा—" निर्बोध वनपक्षी! कुछ समझती भी है। राजकुमारी का आदर कितने दिन ?"

यमुना ने पूछा,—"क्यों कुसुम ! क्या मैं इतनी चंचल चित्त हूं ? जिसे मैंने एक दिन प्यार किया है उसे सदा प्यार करूंगी।"

कुसुम—यह तो ठीक है, किन्तु यदि हृदय एक ही स्थान में बद्ध हो तो वह दूसरी जगह कैसे जा सकेगा ?

यमुना ने हंसकर कहा—"हृदय बद्ध है या नहीं, इसका इस समय क्या मतलब ?"

कुसुम—तुम्हारा मतलब न हो, किंतु कुमारी यमुना का किसके प्रति कितना अनुराग है इसकी परीक्षा का भार कुमार रतनसिंह ने मुझे दिया है, अतः मेरा तो मतलब है।

" तब तुमने परीक्षा कर क्या देखा "

" यही देखा यमुना का अनुराग कुमार रतनसिंह को त्निवा सब पर यथेष्ट है। "

कुमारी ने मुख में अंचल देकर हँसते हँसते कहा,—" यदि ऐसा समझा है तो कुमारी को अभी सावधान कर दो,"

कुसुम–कुमार को छोड़ कर किसी दूसरे को भी सावधान करना है।

यमुना – वह कौन? और किसने तुम्हें भार सौंपा है?

कुसुम – तुमने।

यमुना – मेरा भार तो सदा ही वहन करना होगा।

कुसुम – हँसने की बात नहीं है। आओ यहां पर बैठो, मैं जो कहूं उसे ध्यान पूर्वक सुनो।

कुमारी – संदेहाकुल चित्त से वहाँ पर बैठ गई। कुसुम ने पूछा,–"सच सच कहो तुम्हारा कुमार के ऊपर कितना प्रबल प्रेम है?"

कुमारी ने कुछ क्षण विनत बदन होकर सोचा, फिर कहा,–"प्रेम की किस सीमा का नाम प्रबल प्रेम है मैं नहीं जानती हूं। मैं सिर्फ यही जानती हूं, संसार में मेरे विचार में–कोई ऐसी चीज ही नहीं है जिसके साथ मैं कुमार रतनसिंह का विनिमय कर सकूं। कुसुम! तुझ से मैं मन की बात कहती हूं, सुन, जब मैं भवानी के निकट पूजा करने बैठती हूं तो मैं देवी का मंत्र ही भूल जाती हूं, मुझे केवल कुमार का ही नाम याद आता है, देवी का ध्यान करते समय कुमारी की वही मोहनी मूर्ति मेरे हृदय में आ जाती है। जगदम्बे! मेरे अपराध क्षमा करो, मेरे हृदय के ऊपर मेरा वश ही नहीं है।"

बात पूरी होने पर कुसुम ने देखा कुमारी के नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये हैं। उसने समझा यह प्रेम नितान्त चपल नहीं है। फिर उसने कहा–" यमने! हृदय तो मतवाला होता है उसका दमन न करने से वेग बढ़ जायेगा जिससे

अनिष्ट की अशंका है। लोग क्या क्या कर सकते हैं, क्यों तुम चेष्टा कर हृदय का वेग कम नहीं कर सकती हो ?"

यमुना -कुसुम, तुझे क्या कह कर समझाऊँ तू जानती ही है मेरा हृदय कैसा है। जान बूझ कर निरा और भक्ति का पथ छोड़ कर मेरा हृदय और कहीं नहीं जाता। किंतु इस समय मेरे हृदय की वह दशा नहीं है—यह मेरे वश में ही नहीं हो सकता। कुमार को छोड़ कर इस संसार में और भी कई चाजें है, कुमार के सिवा और भी कई चिंता के विषय है, किंतु बार बार मैं यह सब भूल जाती हूं। इसमें मेरा क्या दोष ? किंतु कुसुम, कुमार के प्रति जो मेरा इतना प्रबल प्रेम है इससे कौनसा अनिष्ट हो सकता है ?

कुसुम--समझ बूझ कर प्रेम करना ठीक होता है। पात्र पात्र का विचार न कर प्रेम करना ठीक नहीं इससे अनिष्ट हो सकता है।

कुमारी ने हँसकर कहा-"तब मुझे कोई आशंका नहीं। पात्रापात्र का विचार कर प्रेम करना होता है तो कुमार से अधिक श्रेष्ठ पात्र इस संसार में कहाँ पा सकूंगी।

कुसुम- कुमार सुपात्र हैं, यह तुम कैसे जानती हो ?

यमुना ने हँसकर कहा-"इसमें जानना क्या ? कुमार वीर, कुमार राजभक्त, कुमार देशहितैषी, कुमार विद्वान्‌ कुमार मिष्टभाषी है। मनुष्य कुछ और भी होता है कुसुम ?"

कुसुम–यह सब सच है, किंतु यह सब उनका बाहरी भाव है। उनका आंतरिक भाव क्या है तुम यह भी जानती हो'

यमुना–उसे जानने की चेष्टा ही क्यों करूं ? ऐसे देव शरीर

मैं दोष होते ही नहीं। यदि कोई दोष हो भी तो मनुष्य मात्र में उस दोष का होना आवश्यक ही है।

कुसुम—वीर रामभक्त विद्वान् और मिष्टभाषी व्यक्ति और, मिथ्यावादी परस्त्रीकातर तथा इन्द्रियपरायण भी हो सकता है। यदि तुम्हारे प्रेमास्पद कुमार में उपरोक्त सब अवगुण अथवा उनमें से एकाधिक होवें तो क्या वह अवगुण मनुष्य मात्र में होने आवश्यक हैं। तुम प्रेम में इतनी दूर बढ़ गई हो, किंतु कुमार में कोई ऐसे दोष हैं या नहीं तुमने कभी खोज भी की?

यमुना—न आवश्यकता हुई, न खोज की।

कुसुम—जो हुआ सो हुआ, यदि अब कभी जान सको कि कुमार प्रतारक, अविश्वासी तथा तुम्हारे सिवा किसी दूसरे को चाहते हैं तो तब क्या करोगी?

कुमारी उठ कर खड़ी हुई, फिर घूमने लगी सहसा स्थिर होकर कहने लगी,—"पहले इस पर विश्वास ही न करूंगी, प्रत्यक्ष देखने पर भी संदेह होगा। जब विश्वास हो ही जायगा तो इष्टदेवी को साक्षी कर आजीवन निष्फल प्रेमानल में जलूंगी पर कुमार से कुछ न कहूंगी।"

कुसुम—उतावली न होओ; व्यग्र न होओ। बैठ कर सुनो, सच झूठ पर स्वयं विचार करो। तुम जानती हो मैं तुम्हारे कल्याण के लिये त्रिकाली नियंत्री "आहेर मोगरा की पूजा" के लिये गई थी। पूजा की समाप्ति पर देववाणी हुई" "बालिका सावधान! हृदय में किसी दूसरे का अधिकार है"

यमुना कांप उठी कुसुम फिर कहने लगी— प्रेमी का

यह आदेश सुन कर मैं बहुत व्याकुल हुई, इसके बाद लौटते समय महारानी के साथ महाराना के संबंध की कई बातें होते होते कुमार रतनसिंह की बात आई। उन्होंने कहा, "रतनसिंह स्वर्गीय खिन्दिनाराजतनया के लिये उन्मत्त है। महाराना ने कुमार से तुम्हारी कुमारी का पाणिग्रहण करने के लिये कहा है इसलिये कुमार के मन की आशा मनही में रह गई है। महारानी से यह सब सुनकर मैं देवी की वाणी को समझी। यमुना! इस समय स्थिर होकर समझ बूझ कर काम करो।

कुमारी की उस समय समझने की शक्ति लुप्त हो गई थी। वह अपने आपे में न रही। उसकी आंखें उन्मादिनी के समान अस्थिर और बाहर निकल आई थीं उसकी देह थर थर कांप रही थी। कुछ देर वैसीही रहने पर कुमारी ने दीर्घ निश्वास छोड़ी और उठ खड़ी हुई। रक्त के वेग को कम करने के लिये दोनों हाथों से अपनी छाती को दबा कर कहने लगी, —"अब क्या समझना है? दूसरे की बात पर विश्वास न करती, सुनती भी नहीं—देवी की वाणी! कुमार प्रतारक! असंभव! तब क्या देवी का वाक्य झूठा उससे अधिक असंभव! देवि! तुम्हारे ही उपदेश का अनुसरण करूंगी। जिस हृदय में स्थान नहीं पाउगी, उसके लोभ को भुलाने का अभ्यास करूंगी।

इसके बाद भग्न-हृदया बालिका बहुत देर तक उन्मादिनी के समान वहां पर विचरने लगी, फिर अपने शयन प्रकोष्ठ को चली गई। कुसुम भी उसके पीछे पीछे गई, इसने आकर देखा मर्म्मपीड़िता यमुना उपाधान में मुख छिपा कर रो रही थी।

# षोडश परिच्छेद ।

## भानुसप्तमी ।

आज माघ शुक्लपक्ष की सप्तमी है। आज राजपूतों के चिर पवित्र सूर्यपूजा का दिन है। इस पर्व का नाम 'भानुसप्तमी' है। आज समस्त राजपूताना उत्साह से उन्मत्त है। देवलवर राज-भवन में भी इसके अनुष्ठान में कुछ त्रुटि नहीं हो रही है। समस्त दिन बंधुबांधवों के साथ सूर्यदेव का गुणगान तथा तीनों समय सब मिलकर समस्वर से उनकी स्तुतिपाठ तथा अर्घ देने के लिये आत्मीय स्वजन गण कोई पूर्व रात्रि से ही तथा कोई आज प्रत्यूष काल से देवलवर राजभवन में एकत्रित हुए हैं। समागत व्यक्तियों को देवलवरराज आदर पूर्वक अर्चनामंडप की ओर ले जा रहे हैं। सब के बैठने पर वहाँ एक वृद्ध ब्राह्मण सूर्य का स्तोत्रपाठ तथा महात्म्यकीर्त्तन कर रहे हैं तथा समीप ही बारह द्विजगण पवित्र अग्निकुंड में सूर्य के लिये आहुति दे रहे हैं। नवागत व्यक्तिगण पहले भानु देव को तथा फिर सभास्थ ब्राह्मणों को भक्तिभाव से प्रणाम कर बैठ रहे हैं पौर्वाह्निक अर्घदान समाप्त होने पर रतनसिंह आये। देवलवरराज ने रतनसिंह को सभामंडप में जाने की अनुमति दी। वीर राजपूतों के लिये सूर्य पूजा ही सबसे मुख्य है। आज प्रणयवृत्ति ने ही रतनसिंह को इस चिरकृत कर्त्तव्य में शिथिल किया। उन्होंने पहले यमुना से भेंट कर फिर सूर्यपूजा में सम्मिलित होना सोचा था। इसीलिये रतनसिंह ने अंतःपुर में प्रवेश किया। वे एक कमरे से दूसरे कमरे में गये पर यमुना के वह स्थिर उत्फुल्ल नयन उनकी दृष्टि

में न पड़े। अंत में जब वे हताश होकर लौट रहे थे तो सन्मुख के कमरे की खिड़की में उन्होंने यमुना को बैठे देखा। यमुना का सम्मुख भाग कुमार न देख सके। जो देखा उससे उनकी उत्कंठा बढ़ी। उन्होंने देखा यमुना की केशराशि बिखरी हुई है, वस्त्र मैले हैं, देह आभूषणहीन और रोगी के समान कृश और कातर है। कुमार ने भय सहित पुकारा—"यमुने!"

यमुना ने फिर कर देखा रतनसिंह खड़े हैं। वह चमक उठी, बीती हुई घटनाएँ स्मृतिपथ से अविकृत भाव से उसके सामने आईं। उसकी इच्छा हुई सब कुछ भूलकर रतनसिंह के पाँव पकड़ रुदन करूं। हठात् उसी समय 'देवी वाक्य' याद आया। उसने सोचा " यह रतन सिंह प्रतारक हैं! "शीघ्र ही देवी वाक्य ने उससे कहा—"हाँ, प्रतारक!" इस विरुद्ध चिंतास्रोत से कोमल हृदय यमुना अवसन्न प्राय हो गई। कुछ देर संज्ञाहीन के समान बैठी रही। इसके बाद पहला ही भाव उसके हृदय में आया। उसने स्थिर, किया। चातुरी जिसकी सिद्ध विद्या है- अबला का सर्वनाश-साधन जिसकी अभिलाषा है, उसके साथ न बोलूंगी यमुना को देखकर रतनसिंह भी चौंक पड़े। वह प्रफुल्लवदना, प्रेमप्रतिमा यमुना की यह दशा क्यों? हाय! दोनों की चिंताएँ इस समय कितनी भिन्न हैं! रतनसिंह ने फिर पूछा,—'यमुने! तुम्हें क्या हुआ है?"

यमुना नतमस्तक हो बैठी ही रही। एक बार उसकी जिह्वा में उत्तर आया किंतु यमुना ने सतर्क होकर उसे प्रकट ही नहीं किया। तब रतनसिंह यमुना के निकट आकर बैठ गये और उत्कंठा से कहा,—"यमुने! तुम्हारा यह भाव क्यों?

सूर्यास्त

यमुना ने व्यस्त होकर खड़ी होते हुए कहा-"मुझसे बोलने का आपको कुछ अधिकार नहीं है।"

इतना कह कर यमुना रोकी हुई नदी के समान जल्द से चली गई। कुमार हत बुद्धि के समान वहीं बैठ रह गये। कुमार भानुसप्तमी को भूल गये, राजस्थान, महाराना, मेवाड़, स्वाधीनता सब को भूल गये, उस समय हृदय एक अव्यक्त उत्कंठापरिपूर्ण था। रत्नसिंह कितनी देर वहां उस प्रकार बैठे रहे उन्हें सुधि नहीं रही जब पूजा मंडप एकत्रित लोगों की समोच्चारित स्तवध्वनि उन्हों ने सुनी तब उन्हें कहीं जाकर होश हुआ। तब उन्होने सोचा एकबार फिर यमुना से भेंट कर उसके चरण पकड़ कर पूछूं कि उसके उस वाक्य का मतलब क्या है। फिर उन्हों ने सोचा यमुना तो स्पष्ट ही बोलने के लिये निषेध कर गई है। वे बहुत देर तक सोचते रहे यमुना उनके किस अनुचित काम से रुष्ट हुई किंतु कुछ भी स्थिर न कर सके। अंत में उन्हों ने सोचा, क्या यमुना का कहीं दूसरी जगह तो विवाह नहीं ठहरा है? क्यों हुआ? किसने किया? उसी के पिता ने तो मेरे साथ विवाह करने का प्रस्ताव किया था। अतः उनका किसी दूसरी जगह विवाह स्थिर करना असंभव है। बहुत देर तक चिंता करने पर भी वह कोई कारण न खोज सके। तब उन्होंने उठ कर आँखें ऊपर कर कहा- "भगवन् आदित्य! मेरे किस पाप के लिये तुमने मुझे यह दंड दिया?"

धीरे धीरे रत्नसिंह बाहर की ओर चले। एक कमरे से निकल कर ज्योंही वे दूसरे कमरे में पहुँचे कुसुम से भेंट हुई,

कुमार ने व्यस्त होकर पूछा,-" कुसुम, सच कहो, यमुना का मेरे प्रति ऐसा भाव क्यों हुआ ?"

कुसुम-यह कहना ही ठीक होगा। यमुना लज्जा से न कह सकी। कुमार की अपेक्षा यमुना के अन्यत्र अधिक प्रेमास्पद हैं। यमुना नितान्त बालिका नहीं है। अब किसी व्यक्ति के साथ उसका नितान्त आत्मीयभाव से बोलना ठीक नहीं।

रतनसिंह बहुत देर तक अटल गिरि के समान खड़े रहे। फिर हृदय विदारक स्वर में कहा -"अच्छा।"

रतनसिंह बाहर आये, प्रखर सूर्य की किरणें उनकी आंखों में पड़ीं। तब उन्होंने वहीं पर भूमि में बैठ कर कहा, -'भगवान भास्कर ! तुम्हारे निरंतर सेवक ने आज इस प्रकार भानुसप्तमी का उद्यापन किया। दयामय ! इस हृदयहीन जगत में अब अधिक न रहना पड़े, शत्रुनिपात के सिवा और किसी काम में मेरे हाथ और मन न लगें, अंत में हे पिता ! तुम्हारे ही चरणों में स्थान मिले।"

---

# सप्तदश परिच्छेद।

## और एक भाव।

शैलश्वर राज अंतःपुर के एक कमरे में कुमारी उर्मिला बैठी है, द्वार तथा वातायन खुले हैं। उत्तर-वातायन के पास कुमारी की पलंग है वहीं पर वह बैठी है। इसी वातायन के पास अंतःपुर की वृक्षवाटिका है। कुमारी की दृष्टि उसी वाटिका की ओर है उसके चित्त का भाव इस समय और

कहीं नहीं है। कुमार अमरसिंह के आने का हाल उर्मिला जानती है। उसी अमरसिंह के ध्यान में इस समय वह मग्न है। वह सोचती है कुमार और मेरे बीच में दुर्भेद्य अंतर है। फिर यह दुराशा क्यों? हठात् फिर सोचती है नहीं नहीं मेरी आशा दुराशा नहीं हो सकती।

कुमारी वहाँ उसी प्रकार चिंता मग्न बैठी थी इतने में उसकी मातुलानी शैलम्बर राजमहिषी, देवी पुष्पवती ने प्रवेश किया। उन्हें देखते ही उर्मिला अपने विशृंखल चिकुर दाम को हाथ से पीछे की ओर कर अच्छी तरह बैठ गई, उस समय उसके मुख में लज्जा का भाव प्रकटित हुआ। ऐसी जगह लज्जा स्वाभाविक ही होती है, मनुष्य जब सबसे छिपाकर कोई काम करता है वह क्षण क्षण में सोचता है शायद यह बात सब पर प्रकाशित तो नहीं हो गई। उसी भय के कारण न वह लोगों से साहसपूर्वक बोल सकता है न किसी के मुख की ओर पूर्ववत् स्थिर और उत्फुल्ल भाव से देख ही सकता है। उर्मिला भी इसी कारण अपनी मातृवत् माननीया मातुलानी के सम्मुख लजाने लगी। उसने सोचा शायद पुष्पवती उसका अमरसिंह के प्रति जो भाव है उसे जान गई है। यथार्थ में पुष्पवती सब कुछ जानती थी। तारा ने कुमारी की कठोर प्रतिज्ञा इत्यादि सब बातें उनसे कह दी थी, रानी इसके लिये बहुत चिंतित हुई। उसने शैलम्बर राज से यह सब कह देने के लिये विचार किया। फिर सोचा पहले कौशल पूर्वक इस संबंध में कुमार अमरसिंह का अभिप्राय जानना आवश्यक है। यदि वह शुभ हो तो राजा से फिर यह रहस्य कहना चाहिये।

यदि शुभ न हो तो ऊर्म्मिला की आशा मुकुल का ही नाश करना होगा। यही सोचकर रानी कुमार अमरसिंह के शैलम्बर आनेका बाट देखती रही। कुमारी ऊर्म्मिला को यह मालूम न था।

पुष्पवती ने पूछा,-" ऊर्म्मिले ! अकेली बैठी बैठी क्या सोच रही है ? तू सारे दिन भर किस चिंता में पड़ी रहती है ? "

ऊर्म्मिला—क्या सोचूंगी ? तुम तो सदा यही सोचती हो ऊर्म्मिला क्यों चिंतित है। किन्तु मैं इतनी चिंतिता नहीं रहती हूं।

पुष्पवती—मेरे सोचने के कई कारण हैं। तुम उत्तरोत्तर दुबली होती जा रही हो, रंग क्रमशः मलीन हो रहा है। यह सब देखकर मुझे सहज ही विश्वास होता है तू किसी चिंता में है।

' तुम मुझे दुबली होती देख रही हो, यही बात है न ! दिन रात न हँसने से तथा दरबार के खंभे के समान मोटे न होने से तुम्हारे मन में आह्लाद नहीं होता। " कहकर ऊर्म्मिला ने मस्तक नीचा कर लिया। एक केश गुच्छ स्थानभ्रष्ट होकर उसके कपोल देश में आ पड़ा, रानी पुष्पवती ने सस्नेह उस केशगुच्छ को उठाकर यथा स्थान रखते हुए कहा,-"उनसे सुना है महाराना प्रतापसिंह के पुत्र अमरसिंह हमारे यहां आये हैं ? "

विनत मस्तक कुमारी ने कहा,-' हां, मैंने भी सुना है। '

पुष्पवती—क्या तू उनको नहीं जानती है ?

ऊर्म्मिला—"जानती हूं। "

पुष्पवती ने मुसक्याकर फिर पूछा—"तूने उन्हें कभी देखा भी है ?"

"देखा है।"

"कहाँ देखा ?"

इस प्रश्न का उत्तर होने के पूर्व ही एक दासी ने प्रवेश कर कहा,—"कुमार अमरसिंह पधारते हैं।"

दासी के जाने पर शीघ्र ही कुमार अमरसिंह ने प्रवेश किया। पुष्पवती ने उठकर कहा,—"आओ वत्स, बैठो।"

एक पलंग के सिवा वहां बैठने के लिये और कोई वस्तु न थी। कुमार कोई चीज बैठने को न पाकर संकुचित हो खड़े ही रह गये।

पुष्पवती—क्या देखते हो ? इस पलंग में बैठो। तुम क्या हमारे कोई पराये हो ?

कुमार पलंग की एक ओर बैठ गये। कुमारी ऊर्म्मिला लज्जा से अपने चम्पकदाम सदृश पांव की अंगुलियों के मुक्ता सदृश नखों से भूमि को खुरचने लगी।

बहुत सी इधर उधर की बातें होने पर रानी ने पूछा, "अमर ! तुमने ऊर्म्मिला को कभी देखा है ? यह मेरी भागिनेयी है।

अमर—यह दास आज आपके पास बैठा हुआ बातें कर रहा है यह कुमारी ऊर्म्मिला की ही कृपा का फल है। कुमारी ने मुझे बार बार मृत्यु के मुख से बचाया है। इस जीवन में इस देवी को न भूलूंगा।

पुष्पवती ने आश्चर्य से कहा—"यह कब ?"

कुमारी ऊर्म्मिला धीरे धीरे धीरे बोली—"क्या सुनती

हो ! कुमार तिलको ताड़ बना कर कहेंगे। रहने भी दो, उसे सुनकर क्या होगा ?"

अमर ने हँस कर कहा,—"मैं सच सच कहूंगा पर वह बात उपन्यास के समान असत्य और असंभव जान पड़ेगी कुमारी ! मैं तुमसे कहे देता हूं जहाँ पर मैं तिल का ताड़ करूं तुम वहाँ पर मुझे रोकना।"

उसी समय एक दासी ने आकर कहा,—"भगवती अरुण मालिनी आई हैं।"

रानीने व्यस्त हो उठते हुए कहा,—"वत्से ! कुछ क्षण ठहरे रहना, मैं अभी आती हू।"

---

# अष्टादश परिच्छेद।

## दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा।

आज खुशरोज या नव रोज पर्व है। आज सम्राट-भवन आनंद, उत्साह और कोलाहल से परिपूर्ण है। पाठकों को इस उत्सव का कुछ विवरण सुनाना अच्छा होगा।

नवरोज नववर्ष के प्रथम दिन—अर्थात् सूर्य जिस दिन मेषराशिमें प्रवेश करता है उस दिन होता है। नवरोज महानन्द का दिन है। सम्राट अकबर ने उस नवरोज के स्थान में खुशरोज नामक एक नये पर्व की रचना की है। यह सब उसी का कपोल कल्पित, अपना मतलब साधने का कौशल मात्र है। उस उपलक्ष में अंतः पुरकी ललनाएं परम आनंदित होती हैं। अकबर के कुटिल चक्र में वृद्ध राजपूत-कुल

ललनाएं और यवन उमरावों की महिलाएँ मिश्रित होती हैं। कुलीन पुरस्त्री गण और वणिक स्त्रियां नाना प्रकार की चीजें वहां बेचती हैं। और पाठकगण!— कहते लज्जा आती है— जो सम्राट कुल भूषण जगत्मान्य हैं, जिनकी न्याय न्यायपरायणता और साधुता की सभी प्रशंसा करते हैं, जो आजभी दिल्लीश्वरोवा जगदीश्वरोवा कहे जाते हैं, वही नरश्रेष्ठ अकबर एक कोने में छिप कर उन अप्सरासदृश रूपसी युवतियों के सौन्दर्य--सुधा का पान करते हैं।

चारो ओर अत्युच्च संगमर्मर की अट्टालिकाएँ हैं बीच में कृष्ण प्रस्तराच्छादित सुविस्तीर्ण आंगन है। ऊपर अद्भुत शिल्पकौशलपूर्ण चंदोवा तना हुआ है। आँगन के चारो ओर की अट्टालिकाएँ पुष्प मालाओं से सुसज्जित हैं। विश्रामार्थ रंगभूमि मे जगह जगह सुन्दर पलंग बिछी हुई हैं। आँगन के किनारे में युवतियां गुलाब के तोड़े, फूल-मालाएँ, टोपियाँ, आसन, सूचीशिल्प, इत्यादि नाना प्रकार की चीजें बेच रही हैं। बेचने वालियों के सिवा और सब खरीदार ही हैं। आठ आनेकी चीज पांच रुपए में बिक रही है वहाँ पर एकत्रित हुई सुंदरियों के लिये पलंग के सिवा सुख शांति के लिये जगह जगह संगमरमरके चौतरों में अतर और गुलाब जल के स्वर्ण पात्र भरे रखे गये हैं। पुष्पों का तो कुछ पूछना ही नहीं है। ऊपर, नीचे प्रांगणमें, युवतियों के अंचलमें कंठ में चारों ओर अपरिमित सुरभिपूर्ण पुष्पराशि बिखरी हुई है।

वहाँ पर बहुमूल्य वस्त्र और अलंकारशोभिता, परम सुन्दरियाँ हिन्दू और मुसलमान युवतियां इच्छानुसार आमोद

प्रमोद में लिप्त है सुंदरियों के अलंकारों की झंकार, कोमल-कंठ निसृत सप्त स्वर निनादकारी सुमधुर संगीतध्वनि, आनंद के चिन्ह स्वरूप हास्य उच्छ्वास, नृत्य जमित पैरों की ध्वनि, सुन्दरी गण वादित वीणा आदि बाजों की ध्वनियाँ एकत्र होकर सम्राट के महल में अति प्रीतिकर मधुर रव पैदा कर रही हैं। रमणियों में से कोई नाच रहीं हैं, कोई गा रही हैं, कोई बजा रहीं हैं और कोई सहेलियों के ऊपर आनन्द से उत्फुल्ल होकर गिरी जा रही हैं।

एक ओर कई राजपूत महिलाएं एकत्रित हो एक को कृष्ण का वेश तथा दूसरी को राधा का वेश सजाकर आनंद कर रही हैं, मानभंजन प्रसंग के अभिमान द्वारा श्री कृष्ण इस समय अपने स्वामी के कष्ट का अनुमान कर रहे हैं। नकली कृष्ण को और सब मान भंग करने का कौशल सिखा रही हैं। बड़े कष्ट से कृत्रिम मान भंग हुआ—तुमुल हास्य की लहर उठी। फिर राधाकृष्ण साथ खड़े हुए, सखियाँ उनको घेरकर ताली बजा बजा कर गाने लगीं—

" चन्द्रक चारु मयूर शिखण्डित मण्डल वलयित केशम् ।
प्रचुर पुरन्दर धनु रञ्जित मेदुर मुदिर सुवेशम् ॥
गोप कदम्ब नितम्बवती मुख चुम्बन लम्भित लोभम् ।
बन्धु जीव मधुराधर पल्लव मुल्लसि तस्मित शोभम् ॥
विपुल पुलक भुज पल्लव वलयित वल्लभ युवति सहस्रम् ।
कर चरणोरसि मणिगण भूषण किरण विभिन्न मिस्रम् ॥
मणिमय मकर मनोहर कुण्डल मण्डित गण्ड मुदारम् । "

एक जगह कई यवन—युवतियाँ एकत्र होकर नृत्य कर

रही हैं। एक बजा रही है, दो गा रही है, दो नृत्य की परीक्षा दे रही हैं। सामने वालियों के ऊपर दर्शिकायें ताल के साथ पुष्प फेंक रही हैं।

रँगभूमि के दक्षिण ओर एक नीलांबरवसना लावण्यमयी युवती खड़ी होकर हँसते हँसते अपनी सखी के साथ मधुर भाव से बातें कर रही है। उसकी आँखें, दृष्टि, वर्ण, यह सभी कमनीय हैं। सारा शरीर सुकुमार है। वह राज-राज-मोहिनी रमणी--कुल--कमलिनी राजकवि पृथ्वीराज की पत्नी किरणमई है।

पाठक, देखिये वहीं पर पश्चिम दिशा की ओर कमख्वाब के परदे की ओट से बादशाह अकबर किस प्रकार अनिमेष लोचनों से उस मनोमोहिनी किरणमई की ओर देख रहे हैं' इतनी बड़ी अवस्था होने पर भी बादशाह की आँखों से बीस वर्ष के युवक की भांति इन्द्रियतृष्णा झलक रही है। एकत्रित सुन्दरियाँ असन्दिग्ध चित्त से वस्त्रों को उन्मुक्त कर आमोद प्रमोद कर रही हैं। कौन जानता था न्याय परायण बादशाह रमणियों के लज्जा—रत्न का हरण करने के लिये वहाँ पर छिपे हुए हैं।

रंगभूमि की एक ओर जो युवती प्रवालखचित स्वर्णाभरण के बीच पद्मराग मणि के समान, पुष्प पात्र के नाना प्रकार के कुसुमों के बीच कमलिनी के समान शोभा पा रही हैं, पाठकों ने उसे पहचाना। वह सुन्दरी मेहरउन्निसा है। मेहर उन्निसा आडंबर रहित वस्त्राभरण भूषित है। षोड़शी मेहर एक दूसरी समवयस्का सुंदरी के साथ परिहास कर रही है। वह शाहजादी बन्नू है। मेहरउन्निसा जिसके साथ



आलाप करने को एक दिन उत्कंठित थी वही उसकी अनुपम रूपराशि और असीम गुणावलि देखकर उस पर मोहित हो गई, वह शाहजादी बन्नू के साथ बात कर रही थी कि इतने में आमिनी वहां पर धीरे धीरे आई। मेहर ने पूछा—"क्यों आमिनी, क्या समाचार है ?"

आमिनी उत्तर देने लगी। इसी बीच में धीरे धीरे बन्नू ने पास ही के गुलाबजल परिपूर्ण हेमकलश को उठाकर हँसते हँसते मेहर के ऊपर उड़ेल दिया। मेहर के वस्त्र गुलाबजल से भीग गये। बन्नू खिलखिलाकर हँसने लगी। मेहर ने अपने नवनीत विनिंदित कोमल बाहु उसके गले में डालकर कहा—"क्या यह भाव सदा रहेगा ?"

बन्नू ने हँसते हँसते कहा—"प्रार्थना करती हूं मृत्यु पर्यंत यही भाव रहे, तुम्हारे मेरे बीच का यह व्यवहार कभी नष्ट न होवे।"

मेहर ने मुसकुरा कर कहा—"यह कैसे होगा ? जिस दिन तुम्हारा सरल हृदय दूसरे का हो जावेगा, और उसके प्रेम के सिवाय तुम्हें कुछ भी अच्छा न लगेगा, तब शाहजादी ! क्या तुम मुझे स्मरण कर सकोगी ?"

बन्नू हँसते हँसते दो पग दूर जाकर कहने लगी—"हा ! हा ! मेहू ! तुमने अपनी ही बात कह डाली ! मेरे भाई के साथ विवाह होने पर क्या तुम मुझे भूल जाओगी ?"

मेहर उन्निसा ने विस्मय के साथ कहा—"तुम्हारे भाई के साथ मेरा विवाह होगा ? किसने कहा ?"

"तुमने तो कुछ नहीं कहा, लोग कहते हैं वही मैंने भी सुनी ।"

"बन्नू ! तुम्हारे मेरे बीच में तनिक भेद नहीं है इसी से

तुम से पूछती हूं सलीम के साथ विवाह करने से क्या मैं सुखी हो सकूँगी?"

मन्नू ने कुछ देर विचार कर कहा—"नहीं।"

"तब तुमने क्यों इस विश्वास को अपने मन में स्थान दिया? जिससे यह प्रसंग ही न उठे तथा जिससे यह कार्य में परिणत न हो उसकी चेष्टा करना तुम्हारा कर्त्तव्य है।"

"बहिन, डर नहीं। मैंने सुना है तुम्हारे पिता ने बादशाह के समीप तुम्हारा अभिप्राय कहा है तथा तुम्हारे दूसरे जगह के संबन्ध की बात भी कही है। बादशाह ने कहा है वागदत्ता कन्या का दूसरी जगह विवाह नहीं हो सकता। अतएव पिता की इच्छा विरुद्ध किस प्रकार तुम्हारा विवाह शाहजादे के साथ होगा?"

मेहेर उन्निसा ने मन्नू का बदन चुम्बनकर कहा—"बहिन, अब तुमने मुझे जो समाचार सुनाया उसका बदला मैं कैसे दूं? प्रार्थना करती हूं ईश्वर तुम्हे सुखी करें।"

कुछ देर बाद मेहेरउन्निसा मन्नू से विदाग्रहण कर आमिना के साथ चली गई।

# ऊनविंशति परिच्छेद।

## प्रेमकी रहस्य कथा।

बहुत से कमरों को पार करने के बाद जो एक दूसरा आंगन मिलता है उसमें रंगभूमि में आई हुई महिलाओं की पालकियाँ रक्खी हुई हैं। मेहेरउन्निसा जब दो कमरों को पार कर तीसरे

में पहुँची तो समीप के कमरे से आवाज आई—"मेहेरउन्निसा !"

मेहेरउन्निसा ने भयभीत होकर पीछे देखा शाहजादा सलीम खड़े हैं। वह कांप उठी, उसने सोचा सलीम अकेले क्यों खड़े हैं ? फिर उसे साहस हुआ उसने सोचा मैं तो अकेली नहीं हूं, जो कुछ हो सलीम के मन में कोई बुरा विचार न था। अकबर ने इसके संबंध में उन्हें कठिन आज्ञा दी थी। उन्होंने कहा था कि मेहेरउन्निसा का विवाह स्थिर होगया है अतः वह परस्त्री है। सलीमने समझ लिया मेहेरउन्निसा रूपरत्न को प्राप्त करना दुराशा है। फिर भी उसे एक आशा थी—यदि मेहेर की इच्छा को परिवर्त्तित कर सके तो उसकी वासना सफल हो सकती है, अतः उन्होंने किसी समय एकान्त में मेहेरउन्निसा से बातें कर तथा नानाप्रकार के लोभ दिखाकर उसका मत परिवर्तित करना निश्चय किया, सलीम को निश्चय था कि आज मेहेर उन्निसा जरूर आवेगी। अतः उन्होंने खूब शराब पी थी, उनका विश्वास था शराब पीकर मस्तिष्क को उद्दीप्त करके मनके भाव अच्छी तरह व्यक्त कर सकूंगा। शराब का इस प्रकार विश्वास कर बहुत से आत्मसर्वनाश कर अंत में परिताप की अग्नि में जलते हैं। आवेशनाशिनीसुरा ने सलीम की जो दशा कर दी थी उससे किसी दूसरे के ऊपर प्रभाव डालना असंभव था। उसके विशाल लोचन लाल हो गये थे, उसके बदन का सुंदर गौर वर्ण रक्तिम होगया था, उसके हाथ पांव अस्थिर थे, वह एक स्थान में स्थिर रूप से खड़ा नहीं हो सकता था, उसकी जिह्वा से शुद्ध शब्द ही नहीं निकल रहे थे। मेहेरउन्निसा ने सलीम को देखते ही सम्मानपूर्वक कहा—"जहांपनाह, अपराध क्षमा करिए मैं आप को न देख सकी।"



सलीम—तब क्या हानि हुई ? मेहेरउन्निसा, तुम अच्छी प्रकार से तो हो ?

मेहेरउन्निसा—शाहजादे के आशीर्वाद से सब मंगल है।

थोड़ी देर बाद मेहेर फिर बोली—"जहाँपनाह, अच्छा मैं अब इस समय जाऊँगी।"

सलीम—जाओगी तो सही—दो बात सुन जाओ। मनकी बात कहता हूं। सुनो, मेरा तुम्हारे ऊपर इतना प्रेम है, किन्तु तुम मेरी ओर देखती भी नहीं, कुछ सुनती भी नहीं। हां और सुनो, इसके बाद कहे शेरखाँ अच्छा है या सलीम ? तुम मेरे साथ विवाह क्यों नहीं करतीं ?

शराब पीने के पहले सलीम ने मेहेरउन्निसा से जो जो कहना स्थिर किया था वह इस समय उसके मन ही में नहीं है। केवल उसकी एक अपरिस्फुट छाया मात्र उसके मन में पड़ रही है, उसकी भी ग्रंथि नहीं, शृङ्खला नहीं; जिस उद्देश्य के लिये वह बातें कर रहा था वह सफल होने के बदले असफल हो रहा है। मेहेरउन्निसा सलीम की बात सुनकर लज्जा से मस्तक नतकर खड़ी रही। सलीमने कहा—"क्या तुम्हें यही वाञ्छित है ? तुम जानती नहीं हो, तुमसे क्या कहूं ? मुझे याद ही नहीं आ रहा है। मुझे जो कुछ कहने को है उसे कह ही नहीं सकता हूं भाई, जाओ अब, मैं तुम्हारा ही हूं।"

मेहेरउन्निसाने समझा शराब के कारण सलीम इस समय होश में नहीं हैं। उसने मनही मन कहा,—"धिक्कार है! यह गठन, यह यौवन, यह अटल संपत्ति, स्वभाव के दोष से सब वृथा है, व्यर्थ है!" फिर प्रकाश्य में बोली—"जहाँपनाह! आपको जो कुछ कहना है आप अच्छी तरह नहीं कह सक रहे हैं,

इस समय आपका शरीर ठीक नहीं है। मैं फिर कभी आपसे मिलूंगी।"

सलीम—सच !

मेहेर—हाँ।

सलीम—अच्छा, भूलना मत।

मेहेरउन्निसा विदा हुई। वह सोचने लगी क्या सलीम सच-मुच मुझे प्यार करता है ?—नहीं नहीं यह केवल मोहकी उत्तेजना है, कुछ देर बाद फिर सोचने लगी 'मोह हो या प्रेम हो जो कुछ हो किंतु सलीम का स्वभाव बहुत मंद है, उसका चरित्र अति घृणित है, वह प्रेम के उपयुक्त नहीं है। फिर सोचने लगी, क्या स्वभाव कभी बदल नहीं सकता ? अवश्य बदल सकता है। अतः स्वभाव के कारण मनुष्य से घृणा करना ठीक नहीं। मैं क्यों इतनी चिंता कर रही हूं ? उपस्थित सुख को छोड़कर अनुपस्थित सुख की आशा में मग्न होना मूर्ख का काम है। इसके बाद मेहेर एक दीर्घ निश्वास छोड़कर अस्फुट स्वर में कहने लगी,—"बहुत दूर।"

आमिना ने पूछा—"क्या बकती हो ?"

मेहेरउन्निसा ने विषण्ण स्वर में उत्तर दिया—" बहुत गरमी पड़ती है न ?"

---

# विंशति परिच्छेद।

## भण्ड तपस्वी।

संध्या होने पर रमणियों का सुख रोज आमोद स्थगित हुआ। महिलाएँ एक एक कर विदा होने लगीं। सम्राट् का महल

आलोक मालाओं से शोभित हुआ। पुर के अंदर तथा बाहर अनेक दीपक प्रज्वलित हुए।

कामिनी-कुल-शिरोमणि पृथ्वीराज-प्रणयिनी किरणमई जब बेगम के पास से बिदा होने लगी तो एक प्रौढ़ा सम्राट के पुर की दासी आकर कहने लगी—"आपकी पालकी पूर्व ओर के आंगन में है, चलिये।"

दासी चली गई, किरणमई ने पूर्व की ओर के एक कमरे में प्रवेश किया। दो तीन कमरों को पार कर उसने देखा बाहर जानेको कोई मार्ग ही नहीं है, उसने सोचा शायद एक दो और कमरों में जाने के बाद वह आंगन मिले, अतः उसने दूसरे कमरे में पदार्पण किया। इस कमरे में अधिक रोशनी न थी, द्वार भी बंद थे, उसने सोचा यही आखिरी कमरा होगा, इसी लिये इसके द्वार बंद है। वह पूर्व के एक कमरे में प्रवेश कर द्वार खोलने को ज्योंही बढ़ी त्योंही किसीने उसके पीछे का द्वार बंद कर दिया। किरणमई को शक हुआ। उसने सोचा मैं कहां आई? और स्त्रियां पश्चिम की ओर गई केवल मुझे ही दासी ने पूर्व की ओर जाने को क्यों कहा? द्वार किसने बंद किया? निश्चय है मेरे पीछे पीछे कोई आ रहा है। तब मेरे लिये यह कोई चक्र रचा गया है क्या? उसने भयभीत होकर कमर में हाथ लगाया, उसकी तलवार साथ थी। अब किसका भय? शस्त्र साथ होने से राजपूत महिलायें यम से भी नहीं डरतीं। वह मुख नीचा कर बाहर जाने का उपाय सोचने लगी, इसी समय एक व्यक्ति ने आकर उसका हाथ पकड़कर कहा,—"सुन्दरि! क्या सोचती हो?" किरणमई ने भयभीत होकर उस परस्त्री के स्पर्श करने वाले मूर्ख की ओर देखा देख कर वह विस्मित

हुई, वह अकबर था। उस भुवनविख्यात, यशस्वी, न्याय परायण, वयः प्राप्त नृपति का इतना निंद्य भाव देखकर बुद्धिमती किरणमई आश्चर्य चकित होगई। पूर्व का सूर्य पश्चिम में उदित हो जाता तो भी उसे इससे अधिक आश्चर्य न होता। किरणमई कुछ देर तक संज्ञाशून्य रही। बादशाह ने सुन्दरी को उस दशा में देखकर कहा—"सुन्दरि ! तुम विस्मित हुई हो किन्तु विस्मितका कोई कारण नहीं है। प्रेम का यही धर्म है। मैंने तुम्हारे लिये बहुत कष्ट सहा है। बहुत कौशल से तुम्हें इस पथ से लाया हूं।" बादशाह की बात पूरी भी न हो पाई थी कि किरणमई ने जोर से अपना हाथ छुड़ा लिया। अकबर उसके वेग को न सह भूमि में गिर गया। किरण के मनमें घृणा, क्रोध और लज्जा के भाव प्रकट हुए। उसने अंचल से अपना मुख ढक लिया। निर्लज्ज अकबर ने फिर कहा,—"ललने ! मुझ से विमुख न होओ, मुझे सेवक समझकर मेरी ओर करुणा की आंख से निहारो।"

लेखनी ! तुम चूर्ण हो जाओ, मसी ! तुम सूख जाओ, कागज़ ! भस्मीभूत हो जाओ। तुम्हारी कुछ आवश्यकता नहीं है, तुम अटल जल में डूब जाओ, जिसका चरित्र इतना निर्मल समझते थे, भक्ति सहित जिसका नाम लेते थे, उसका यह चरित्र ! तब किसका विश्वास करें ? किसे पुण्यात्मा कहें ? जान पड़ता है मानवजाति उच्च चरित्र का आदर्श नहीं है, इसके लिये उसकी सृष्टि नहीं हुई है। यह सब सोचने से लेखनी सहित हाथ कांप रहा है। इच्छा तो होती है अब अधिक लिखने का काम नहीं, जो कुछ लिखा गया है वह विध्वंसित होकर अतीत की विस्मृति-ही में मिलजाय।

किरणमई कुछ न कहकर दो पग पीछे हट गई। इन्द्रिय चपल अकबर फिर उसके समीप आकर कहने लगा,—"सुन्दरि! तुम मेरी प्राणेश्वरी हो, मेरी उपेक्षा न करो। मैं तुम्हें प्राणपण से चाहता हूं।"

बादशाह ने फिर किरणमई का हाथ पकड़ लिया। किरण मई की पवित्र देह क्रोध से कंपित हो उठी। उसके पवित्र आत्मा में पवित्र भाव परिस्फुट हुए। उसके परम सुन्दर मुखने रक्तिमवर्ण धारण किया। सहज अनुपम सौन्दर्य अचिर संवर्धित हुआ। यदि इस समय अकबर घूंघट खोलकर उसकी मुख शोभा देख पाता तो सदा के लिये चैतन्य खो देता। किरण ने फिर जोर से अपना हाथ छुड़ाया और कहने लगी,—"नराधम! अपनी पदमर्यादा भूल गया है? जा, अभी समय है। सहज ही चला जा नहीं तो तेरे लिये विपद है।"

अकबर ने हंसकर कहा—"क्यों मेरे ऊपर इतनी निर्दय होती हो? जरा सोचो मैं किस कारण तुम्हारे प्रेम के अयोग्य हूं?"

किरणमई क्रोध को सँभाल कर कहने लगी—"बादशाह! छि: छि: आपके समान महोच्च व्यक्ति के मुख से यह सुनकर मुझे लज्जा आती है, आपको तो इससे अधिक लज्जित होना उचित था। बुद्धि दोष से कदाचित आपकी ऐसी मनोवृत्ति हुई होगी। जो हुआ उस पर कुछ वश नहीं। आप इस समय जावें। मैं प्रतिज्ञा करती हूं आपकी यह ग्लानिसूचक घटना किसी से न कहूंगी।"

बादशाह ने सोचा अब किरण कुछ रास्ते पर आई है। फिर हंसकर कहा—"प्राणेश्वरी!"

किरण ने बाधा देकर कहा—"फिर वही बात? सचमुच मैं

अब तुम्हारी विपद् नज़दीक ही है।"

बादशाह ने फिर हँसकर कहा—"घोर क्षुधा है—भोजन समीप है—फिर भी भोजन करने से वंचित हूं, इससे अधिक और क्या विपद हो सकती है?"

किरणमई ने घूंघट खोलकर क्रोध से लाल आंखें दिखाकर कहा—"पामर! अभी तक रास्ते पर नहीं आया? अब भी अपनी पदमर्यादा स्मरण कर सावधान होजा।"

बादशाह ने इस पर कर्णपात भी नहीं किया। धीरे धीरे सुन्दरी के समीप आकर उसने घुटने टेककर कहा—"सुन्दरि! क्या मेरी इतनी भर्त्सना करती हो? क्यों मेरी प्रार्थना नहीं सुनती हो? तुम्हें मैं हृदय से चाहता हूं, मैं तुम्हारा दासानुदास हूं। हमारा यह गुप्त प्रणय कोई जान भी न सकेगा। किसकी शक्ति है जो इसका उल्लेख करे?"

किरणमई मुंह फिरा कर खड़ी होगई। उसकी आंखों से आग की चिनगारियां निकल रही थीं।

अकबर—सुन्दरि! धनबल, रत्नबल, संपत्तिबल इत्यादि का मेरे पास कुछ अभाव नहीं है। तुम्हें नहीं देने को मेरे पास कुछ नहीं है. तुम मेरे ऊपर कृपा करो।

किरणमई ने क्रोधाग्नि कंपित स्वर से कहा—नरश्रेष्ठ! तुम मुझे लोभ दिखा रहे हो? क्या तुम सोचते हो संपत्ति के लोभ से मैं तुम्हारे घृणित प्रस्ताव को सुनूंगी? तुम्हारे क्षुद्र हृदय को धिक्कार है! सारे विश्व के राज्य से भी सतीत्व नहीं खरीदा जा सकता है, तुम इस महत्-तत्व को कैसे समझोगे? तुमसे अनुरोध करती हूं मेरा रास्ता छोड़ दो, मैं जाती हूं।"

बादशाह ने समझा कार्य सिद्धि सहज नहीं होगी भय दिखाना जरूरी है। यह सोच उसने कहा,—"इतनी देर तक वृथा कर तुमसे प्रार्थना करता रहा; जान पड़ता है, तुम्हारे साथ सद्व्यवहार अरण्यरोदन है। जानती हो, मैं कौन हूं ? मैं सोचने मात्र से क्या नहीं कर सकता हूं ?"

किरणमई ने तत्क्षण कहा,—'मैं जानती हूं तुम मनुष्य शरीर में पशु हो, तुम्हारी इच्छामात्र से अनेकों का अनिष्ट हो सकता है यह सच है, किन्तु तुम स्मरण रक्खो तुम्हारे समान सौ बादशाह भी मिलकर किरणमई का सतीत्व विनाश नहीं कर सकते हैं। तुमसे फिर कहती हूं मेरा रास्ता छोड़ो, मुझे जाने दो।

अकबर ने उस पर कुछ ध्यान न दिया। किरणमई के समीप आकर उसका आलिंगन करने के लिये हाथ फैलाते हुए उसने कहा—सुमुखि! अब निस्तार नहीं है, कहाँ जाओगी। यहाँ कौन तुम्हारा सहायक है ? देखो, तुम्हारा गर्व चूर्ण कर सकता हूं या नहीं।

किरणमई ने थोड़ा हटकर अकबर के अपवित्र आक्रमण से निष्कृति लाभ की ओर आंखें ऊपर कर मनही मन कहा,—"मातः भवानि! दासी को आत्म-रक्षा के लिए शक्ति दो!"

इसके बाद क्षण भर में उसने कमर से कटार निकाली। प्रज्ज्वलित आलोक की किरणों में तलवार चमक उठी। कटार देखते ही अकबर स्थिर हो कर खड़ा हो गया। किरणमई ने दाहिने हाथ से कटार खींचकर कहा,—"दुराचारी! बस, फिर एक पग बढ़ने ही से आज का दिन तेरा अंतिम दिन हो जायगा। जा, मैं तुझे क्षमा करती हूं; बिना कुछ कहे-सुने यहाँ से चला जा।"

अकबर ज्ञानहीन के समान खड़ा सोचने लगा कटार खिंच

गई है परिणाम शुभ नहीं है; अतएव इस बात को यहीं पर शेष कर देना उचित है। फिर भी एक बार अंतिम चेष्टा करने के उद्देश्य से उसने धीरे धीरे कहा—"सुन्दरि !"

उक्त शब्द सुनते ही किरणमई ने गंभीर स्वर से कहा,—"तुम्हारी, मेरी अथवा दोनों की आयु जान पड़ती है आज पूरी हो गई। आ, मूढ़ इस अस्त्र से आज तेरी आशा का अंत करती हूं।" यह कहकर उस सती ने अकबर को पृथ्वी में पटक दिया और उसकी छाती पर चढ़ कटार खींचकर बोली—"रे चांडाल ! यदि तुझे अपने जीवन का मोह है तो परमेश्वर की शपथ लेकर प्रतिज्ञा कर कि आज से कभी किसी रमणी को इस प्रकार कलंकित करने की चेष्टा न करूंगा।"

उस समय किरणमई की ज्योतिपूर्ण समस्त देह, प्रदीप्त आँखें तथा भैरवी मूर्ति देखकर भास होता था मानो दानव-दलिनी देवि दुर्गा दैत्य का संहार कर रही थी।

भय से कंपित अकबर ने अस्फुट स्वर में कहा,—"मां ! अपराध क्षमा करो, आज से समस्त राजपूत-कुल-ललनायें मेरी भगिनी हुईं।

किरणमई—जा ! मैंने तुझे क्षमा किया। किंतु सावधान !

धीरे धीरे द्वार खोलकर भग्न मनोरथ शाहंशाह अकबर अपमानित चोर के समान वहां से भागा।

अपने जीवन में अकबर ने किसी के समीप इस घटना का उल्लेख नहीं किया। इस घटना से राजपूत महिलामंडली के प्रति उसकी भक्ति और श्रद्धा अमित परिमाण में बढ़ गई। ऐसे ही स्थान अकबर के उदारता और श्रेष्ठता के परिचायक हैं

# एकविंशति परिच्छेद ।

## समर संगिनी ।

---

तीन दिन में ही शैल्म्बरराजने तीन हजार सेना एकत्र कर ली। उस सब सेना को साथ लेकर अमरसिंह का कमलमीर जाना निश्चय हुआ। इसके बाद जितनी सेना एकत्रित हो सकेगी उसे शैल्म्बरराज स्वयं अपने साथ लेकर महाराना की पताका के नीचे उपस्थित होंगे यह स्थिर हुआ।

संध्या समय कुमार अमरसिंह शैल्म्बरराज के प्रासाद के एक प्रकोष्ठ में बैठे २ अदृष्ट के परिणाम की चिन्ता कर रहे थे, इतने में कुमारि ऊर्म्मिला ने वहां प्रवेश किया। उसके पावों की नूपुर झनकार ने अमरसिंह का ध्यान भंग किया। उर्मिलाने पूछा,—"युवराज! तुम—हा! आप क्या कलही कमलमीर जावेंगे?"

अमरसिंह—कुमारि! तुम मुझसे आत्मीयवत् संभाषण करते क्यों झिझकती हो? जब तक तुम मुझसे समान भाव से न बोलो मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर ही न दूंगा।

लज्जा सहित ऊर्म्मिलाने मुसक्याते हुए कहा—"आपके साथ आत्मीयता से लाभ क्या? आप इस प्रकार कार्य्य-सागर में मग्न है, आँखो की ओट होने पर आप तो सब कुछ भूल जावेंगे।"

अमरसिंह ने हँसते हुए कहा—"जिसकी तलवार शत शत वीरों के वध में भी पराङ्मुख नहीं है, जिसके साहस की तुलना नहीं, उसको ऐसी आशंका शोभा नहीं देती। कुमारि!

तुम्हारी बातें सुनकर मुझे हँसी आ रही है।"

कुमारी ने कहा—" तलवार की शक्ति देह के ऊपर है, हृदय के ऊपर उसका कुछ अधिकार नहीं, जिसका हृदय उन्मत्त और उदार है, किसकी शक्ति है उसे रोके ? युवराज ! कौन जाने, आपका हृदय मेरी अनुपस्थिति में कौनसा भाव धारण करे।"

अमरसिंह—मेरा तो हृदयही नहीं है।

ऊर्म्मिला—तब यह अमर की तय्यारी क्यों है ? जिस वीर का हृदय नहीं, वह कभी देशोपकार नहीं कर सकता। युवराज ! तब कमलमीर जाकर क्या होगा ? निश्चिन्त होकर विश्राम करिये—हृदयहीन व्यक्ति के द्वारा देश का उपकार संभव नहीं।

अमर— तुम्हारी बात ठीक है, मेरा हृदय तो है, पर उस पर मेरा अधिकार नहीं है।

ऊर्म्मिला—यह क्या राजपुत्र ?

अमर—सच कहता हूं। जिस सुन्दरी की मधुर बातों को सुनते सुनते मैं संसार को भूल गया हूं, मेरा यह क्षुद्र हृदय संपूर्ण रूपसे उसी भुवनमोहिनी की इच्छा और आज्ञाके आधीन होगया है, इसीलिये मेरा हृदय मेरा नहीं है।

ऊर्म्मिला ने मस्तक नीचा कर लिया।

अमरसिंह ने धीरे धीरे उनके निकट जाकर पूछा—"ऊर्म्मिले ! कल मैंने कमलमीर जाना निश्चय किया है। तुम क्या कहती हो ?"

ऊर्म्मिला नीरव रही। युवराज ने फिर पूछा,—" मेरे जाने में क्या तुम्हें कुछ आपत्ति है ?"

ऊर्म्मिला ने दीर्घ निश्वास के साथ कहा—"नहीं, आज हम

लोगों की जैसी दशा है, उसमें एक क्षण के लिये भी बाधा देनी ठीक नहीं। हमारा राज्य नहीं, धन नहीं, गृह नहीं, भोजन नहीं, आश्रय नहीं, हमारे द्वार में प्रबल शत्रु खड़ा है, इस समय हमारी हँसी शोभा नहीं देती! कौन जानता है युवराज! यवन किस समय उदयपुर में आक्रमण कर दें। ऐसा दारुण समय हमारी और चिन्ताओं के लिये उपयुक्त नहीं है।

कुमार कुछ देर बाद बोले—"कर्त्तव्य से कभी भूलकर भी मुख न मोड़ूँगा यह निश्चय है। किंतु कितने दिन बाद इस युद्ध से पीछा छूटेगा इसका क्या ठीक? हमारे भाग्य में क्या है इसे कौन जाने? जो भी हो, ऊर्म्मिले! मेरा हृदय इस समय द्विगुण उत्साहित हुआ है। तुम्हारे साहस, स्वदेशानुराग और तेज ने मेरे हृदय को सौगुना उत्साहित किया है, जब मैं रण-सागर में निमग्न हो जाऊँगा तथा जब मेरी तेज तलवार से सहस्रों यवन-मुण्ड वृन्तच्युत फल के समान भूमि पर गिरेंगे और उनके कंठसे निकली हुई रुधिर की नदी मेरे पावों के पास बहती हुई मुझे अतुल आनंद देगी, उस समय यह तुम्हारी जगन्मोहिनी मूर्त्ति इष्टदेवी के समान मेरी हृदय-वेदी में आविर्भूत होकर मुझे उत्साह प्रदान करेगी। जब दुरन्त यवन का अपवित्र खड्ग मेरे अजान में मुझे जीवन विहीन करने की चेष्टा करेगा, उस समय ऊर्म्मिले! तुम्हारी यह निरुपम मूर्त्ति इष्टकवच के समान मेरी रक्षा करेगी।"

ऊर्म्मिला ने बाधा देकर कहा—"और युवराज! जब आप यवन-युद्ध में क्लांत होकर चारों ओर सहायता के लिये देखेंगे तब उस समय यह दासी सचमुच में आपके श्रीचरणों के समीप उपस्थित न रहेगी क्या? उस समय क्या यह हृत

भागिनी आपके हाथसे छूटी हुई तलवार, स्थानभ्रष्ट तरकस, विछिन्न कवच को यथास्थान न रख सकेगी क्या ?"

अमर ने सविस्मय कहा–"घोर यवन–युद्ध में तुम मेरी सहायता करोगी ? धन्य तुम्हारा साहस !"

ऊर्म्मिलाने समुज्ज्वल नेत्रों से कहा,–"क्या युवराज ! मैं यवन–संग्राम में न जाऊँगी ? घर में सुखकी शय्या में आपकी विपद् को कल्पना की आंखों से देखूंगी, तथापि स्वयं उसके प्रतिविधानार्थ अपनी देहका एक भी रक्त बिन्दु न बहाऊँगी, यह क्या राजकुमार ?"

अमरसिंह ने कहा,–"ऊर्म्मिले ! मैं अनुरोध करता हूं इस भयानक इच्छा का परित्याग करो।"

ऊर्म्मिला के उत्तर देने के पहले ही एक दासी ने आकर कहा–"शैलम्बरराज कुमार को स्मरण कर रहे हैं। कुमार को विवश हो कर जाना पड़ा। जब तक वह जाते हुए दिखाई दिये कुमारी ने अतृप्त आंखों से उस सौन्दर्य्य का संदर्शन किया। उनके अदृश्य होने पर कहने लगी–"इस अनंत सुख की कल्पना नहीं। इस सुख की गति क्या सुरक्षित रहनी संभव है ? संसार में क्या कभी किसीने अविश्रांत सुख भोगा है ? जिस राजस्थान के कल्याण कामना के लिये मैं अपना असीम सुख विसर्ज्जन कर रही हूं, कौन जानता है उस राजवाड़ा का क्या होगा ? जैसे कोई मुझसे कह रहा है "इस राजवाड़ा की मुक्ति दूर, बहुत दूर, असंभव है !" यह क्या ? पुण्य–भूमि की मुक्ति असंभव ? कौन जानता है भवानी की क्या इच्छा है ? किन्तु क्या आशा कभी छूट सकती है ? तब मैं क्यों आशा करूँ ? क्यों भग्नोत्साह



होऊँ? जातीय प्रेमोन्मादिनी बालिका वहीं पर इस प्रकार भावना सागर में डूबी हुई रही।

---

# द्विविंशति परिच्छेद

## हल्दीघाटी

---

अँधकार परिपूर्ण भविष्य के अंतरतम प्रदेश में जो विधाता की व्यवस्था है उसे कौन जान सकता है? हे मनुष्य! तुम जिस आशा से जिस चिंता से संसार सागर में तैरते हो, कौन जानता है उसका क्या परिणाम होगा? जिस आकांक्षा से मानव! तुम जलधि के जल में डूबते हो, कौन जानता है उसका तुम्हें क्या पुरस्कार मिलेगा? वीरवर महाराणा प्रतापसिंह तथा उनके आत्मीय और अनुचरों ने जो सोचा था वह न हुआ। जगद्विख्यात हल्दीघाटी की लड़ाई में उनकी हार हुई।

संवत् १६३२ का ७ वाँ श्रावण कैसा भयानक दिन था! इतिहास का वह चिरस्मरणीय रक्त से रंगा हुआ दिन है, उस दिन हल्दीघाटी में जो भयानक युद्ध हुआ किसकी शक्ति है उसका वर्णन करे?

उत्तर में कमलमीर और दक्षिण में ऋषभनाथ से घिरी हुई २४ कोस भूमि का नाम हल्दीघाटी है। वह स्थान छोटे छोटे पर्वत, छोटे छोटे वन और छोटी छोटी नदियों से परिपूर्ण है। बिना इन गिरि-संकटों को पार किये राजधानी में प्रवेश करना असंभव है।

इसी स्थान में आज २० हजार सशस्त्र राजपूत सेना शत्रुके आगमन की प्रतीक्षा में खड़ी है। भील योद्धा तीर धनुष अथवा पत्थरों को हाथ में लेकर पर्वतों के ऊपर खड़े हैं। कई स्थानों में बड़ी बड़ी शिलाएँ इस प्रकार रक्खी है कि सामान्य बलप्रयोग से ही वह नीचे गिर कर असंख्य शत्रु-सेना का संहार कर देवें। सारी सेना का बदन तेज, उत्साह और आनंद से उत्फुल्ल है। सभी शत्रु के निपात में दृढ़ संकल्प हैं। चमकती हुई तलवारों, तेज बर्छों आदि की उज्ज्वलता से, वीरों की आँखों से निकला हुआ तेज, कपड़ों की चकाचौंध से आज रणभूमि उद्दीप्त है। सामने स्वयं महाराणा प्रतापसिंह विशाल वक्ष लिये यवनपति का रोध करने के लिये खड़े हैं उनके शिर में श्वेतछत्र है। चेतक नामक प्रभुपरायण, बलशाली घोड़ा वीरवर प्रतापसिंह को लिये खड़ा है। दारुण उत्साह से अश्व स्थिर नहीं हो रहा है। अपने तेज से पृथ्वी को विदीर्ण करने के लिये पावों के नीचे के शिला खंडों में पदाघात कर रहा है उन पत्थरों में से आग की चिनगारियाँ निकल रही हैं। महाराणा की दाहिनी ओर कुमार अमरसिंह और कुमार रतनसिंह घोड़ों में चढ़े हुए हैं। अमरसिंह के मुख का तेज अब घोर चिन्ता से आच्छन्न है, रतनसिंह की मूर्त्ति उन्मत्त की भांति, लोचन युगल रक्तवर्ण, वदन श्री हीन है। आज समर में प्राण त्याग कर इस हृदय दाह संसार से पीछा छुड़ाना ही उनका स्थिर संकल्प है।

राजपूत-कुल-पाल गणों ने उस दिन अपने लुप्त गौरव के उद्धारार्थ प्राणपण से युद्ध किया। उस घोर युद्ध में राजपूतों ने जो असाधारण वीरत्व प्रकाश किया, उसका वर्णन करना

असंभव है। रणकल्याणी भवानी देवी का पवित्र नाम स्मरण कर रणसागर में जो वीर तैर रहे थे, उसका स्मरण करने ही से हृदय विस्मय से भर जाता है। प्रतिद्वन्द्वी यवन-सेना की संख्या विपुल थी। मुसलमानों की सेना में से चुने हुए श्रेष्ठ वीर उस युद्ध में उपस्थित थे। स्वयम् शाहजादा सलीम उनके अधिनायक थे। असाधारण बुद्धि और शक्ति संपन्न, रणचतुर महाराज मानसिंह और सुपटु महावत खाँ उनके दाहिने और बाएँ हाथ थे। ऐसे प्रबल विरोधी शत्रु मंडली से जयलाभ की आशा असंभव थी। तथापि प्रिय पाठक! एक बार कल्पना के नेत्र से उस शोणित-स्रोत-प्रवाहित भारत के पवित्र क्षेत्र हल्दीघाटी के दर्शन करिये। एक बार उस अतीत के दो सौ वर्षों को पार कर कल्पना को उस हृदय-मन-विह्वलकारी शोणिताक्त रंगभूमि के चित्र मानस-मंदिर में स्थापित करिये, एक बार वह तेज, उत्साह, आनंद और आशापूर्ण, यंत्रणाविन्ह हीन वीरगति पाये हुए राजपूतों का स्मरण करिये, और पाठक! यदि कर सकें, तो यह सब सोचते सोचते दो बिन्दु अश्रु-पात भी कर दीजिये, उसमें भी पुण्य है, उसमें भी शांति है।

प्रताप उसमें कितने उत्साह, कितने उद्यम, कितने आनंद और कितने अनुराग से युद्ध कर रहे थे? पाँव के नीचे शत्रु मुण्ड लुड़क रहे थे। देह और वस्त्र शत्रु-रक्त से भीग गये थे, हस्तस्थित अस्त्र शत्रु का नाश कर रहा था, इससे अधिक प्रताप के लिये और आनंद की वस्तु क्या होती? किंतु मान-सिंह कहाँ है? वह भ्रष्ट कुलांगार कहां है? उसे युद्धक्षेत्र में यथोचित पुरस्कार देने की बात थी; वह पाखंडी कहाँ है? प्रतापसिंह ने एक बार स्थिर होकर उसे देखने को चारों ओर

दृष्टि की तो उसे बहुत दूर पाया। असंख्य शत्रुसेना को भेद किये बिना वहाँ जाना असंभव था। जब उन्होंने अपनी ओर देखा तो अपनी सेना को नितान्त हारा पाया उसकी आशा न देखी। तब कैसे शत्रुओं का संहार करमन का दुःख मिटेगा? मानसिंह को अपने हाथ से उचित फल देने के लिये असीम उत्साह और शक्ति से शत्रुओं का दल भेदन करने को चले। उद्देश्य पूरा न हुआ। हाथी में चढ़े सलीम ने उनकी गति रोकी। सलीम को देख कर प्रताप अपना उद्देश्य भूले नहीं, किसकी शक्ति है प्रताप का अमोघ आक्रमण सह सके? प्रताप ने सलीम के ऊपर आक्रमण किया, एक एक कर उनके अंगरक्षक गिरने लगे, तब उस समय सुशिक्षित चेतक ने अपने पांव सलीम के हाथी के सिर में रख दिये और ज्योंही प्रताप ने अकबर-पुत्र का मुंड छेदन करने के लिये बरछा उठाया ज्योंही भीत, कातर और महावत हीन हाथी ने भाग कर भावी भारतेश्वर के जीवन की रक्षा की। नहीं तो उसी दिन उस समरक्षेत्र में उनके जीवन की दूसरी व्यवस्था हो जाती; इतिहास के पृष्ठों में बादशाह जहांगीर का नाम ही न रहता तथा नूरजहाँ की भाग्य लतिका मुगल-मुकुट से न लिपटती। भयभीत हाथी के कारण सलीम तो बच गये किंतु वह स्थान मनुष्यों के रक्त से भर गया। घायल प्रताप की सहायता के लिये राजपूत-सेना के वहां पर आने से तथा सलीम की रक्षा के लिये यवनों के उपस्थित होने के कारण वहां पर नर-हत्या की सीमा न रही। सलीम के हाथी के भाग जाने पर प्रताप का वध करना ही उस समय यवन मात्र का एक मात्र उद्देश्य हो उठा। प्रताप की सेना भी उस समय युद्ध त्याग कर जाति मान की रक्षा करने-


प्रताप के जीवन की रक्षा करने में व्रती हुए। अतः जिस ओर प्रताप जाते थे, उसी ओर भयंकर मारकाट से मनुष्य एक क्षुद्र कीट के समान नष्ट होने लगे।

रक्ताक्तकलेवर रतनसिंह प्राणपण से युद्धकर क्लांत होगये थे। शरीर लोहू लुहान होगया था, हाथ पाँव बलहीन होकर काँप रहे थे, आँखें प्रायः बंद होगई थीं। पर अब भी वे हाथ से तलवार चला ही रहे थे किंतु वह सब निरर्थक था। इसी समय कई यवन योद्धाओं ने आकर उन पर भीमरव से आक्रमण करना आरम्भ किया। अमरसिंह दूर से यह देखकर शीघ्र ही वहां पर आये और उन्होंने असाधारण कौशल से आक्रमणकारियों को हटा दिया। उस समय क्षीण विकम्पित स्वर से रतनसिंह ने कहा,—"भाई! मेरी आखिरी प्रार्थना पर ध्यान दो, आज का दिन मेरे जीवन का अंतिम दिन होने दो, मुझे अब न बचाओ।"

रतनसिंह का हृदय इस प्रकार उदासीन क्यों हो रहा है, इसका सब भेद अमरसिंह जानते थे। उन्होंने उत्सुकता से कहा—"भाई! यह कैसी भ्रांति है? क्या तुम अपने हृदय की हताश यातना का अंतकर मेवाड़ का शांति-सुख नष्ट करोगे?"

रतनसिंह ने पहले आकाश की ओर फिर महाराणा की ओर उँगली कर कहा—"मेवाड़ की स्वाधीनता और उन्नति महाराणा के ही द्वारा होगी। मैं तो इस काल-सागर में सिर्फ पानी के बुलबुले के समान हूं।"

ठीक इसी समय जहाँ पर महाराना शत्रुओं से घिरे थे वहाँ बहुत हल्ला हुआ। अमरसिंह उस ओर दौड़े, रतनसिंह भी उसी ओर जाने का प्रयत्न करने लगे, किंतु दो चार पग जाते २

उनकी कातर देह कंपित होकर भूमि पर गिर पड़ी। अमरसिंह, उनकी यह दशा देख बहुत चिंता में पड़े। किंतु उनकी वह चिंता बहुत देर तक न रही। उसी समय एक किशोर राजपूत योद्धा दो भीलों की सहायता से रत्नसिंह की अचेत देह उठा कर सावधानी से रक्षा की जगह ले गया। अमरसिंह ने उस किशोर योद्धा को पहले कहीं देखा है, उनको ऐसा संदेह हुआ। जो भी हो, वह फिर शीघ्र ही पिता की सहायता के लिये जाकर घोर समर-समुद्र में कूदे। किंतु उन्हें बहुत देर तक युद्ध न करना पड़ा। चार पाँच यवन योद्धा उनको घेरकर अनवरत आघात करने लगे। अमरसिंह ने देखा सब राजपूत महाराना की रक्षा में व्यस्त हैं और तमाम यवन उन्हीं के वध की चेष्टा कर रहे हैं। उनकी सहायता को कोई नहीं है, केवल वही किशोर योद्धा घायल और लोहूलुहान होकर भी उनके पीछे खड़ा यथा साध्य उनकी रक्षा कर रहा है। अमरसिंह युद्ध करने लगे,—कई शत्रुओं का संहार किया सही, किंतु अमरसिंह अपने को न सँभाल सके। उनका शिर घूमने लगा और वे क्रमशः बेहोश होने लगे। उस समय भी उसी किशोर योद्धा ने, घोड़े की पीठ से गिरते हुए अमरसिंह को दोनों हाथों से पकड़ लिया और पहले की भांति भीलों की सहायता से उन्हें युद्धभूमि से ले गया। बेहोश होते समय अमरसिंह ने उस किशोर योद्धा से कहा,—"पहचान लिया—ऊर्म्मिले!—अच्छा नहीं किया—महाराना को देखो।"

देश के प्रेम में उन्मत्त प्रतापसिंह बाह्यज्ञान हीन हो रहे थे। वह बार बार उत्साह पूर्वक शत्रुसेना के बीच में प्रवेश कर असाधारण वीरत्व से शत्रुओं का संहार करने लगे और अपने

जीवन को महा विपद में फंसाने लगे। बारबार राजपूत वीर आत्मपण से उनकी रक्षा करते थे। प्रताप की सारी देह शोणि-ताक्त तथा घावों से क्षत-विक्षत होरही थी। मुसलमानों का विश्वास था प्रताप के वध मात्र से ही जयलाभ है। राजपूत समझते थे महाराणा की रक्षा करने ही से सबकी रक्षा है तथा उनके जीवन रहते कोई हार नहीं है। किंतु जो दशा हो गई थी उससे महाराणा की रक्षा करना असंभव था। महाराणा स्वयं आत्मरक्षा के लिये चिंता तथा ममता शून्य थे, उनका सैन्यबल भी, बहुत कम होने के कारण उनकी रक्षा करने में असमर्थ था। उस समय स्वदेशवत्सल वीर-भक्त झालाराज मानसिंह शत्रुकी जयध्वनि, सैनीके कोलाहल, मुमूर्षु के आर्त-नाद, अस्त्रों की झंकार, घोड़ों के हिनहिनाने, हाथियों के गर्जन को चीर कर प्रतापसिंह के पास आये और बोले—" वीरवर ! जगत्पूज्य महाराणा वंश के केतन ! आपही इस समय हमारे आशाभरोसा हैं। आपके जीवित रहने से मेवाड़ के भविष्य की सब आशाएँ हैं, इस युद्ध में यदि आपके जीवन का अंत हुआ तो उसके साथ हमारी सारी आशाओं का भी अंत हो जायगा। इस समय आपकी क्या इच्छा है ? "

प्रतापसिंह ने दीर्घ निश्वास त्यागकर कहा,—" क्या अभी जय की आशा नहीं है ? "

आँखों में आँसू भरकर झालापति ने कहा,—" आशा तो बहुत देर हुई छोड़ दी है। केवल आपकी ही आशा से इस समय भी युद्ध-क्षेत्र में हूं। आपकी जीवन-रक्षा को राज्य-जय से अधिक श्रेष्ठ समझता हूं। "

प्रताप — अमर और रत्नसिंह कहां हैं ?

झालाराज—युद्ध में पतित हुए हैं, किंतु जीवित हैं या मृतक मालूम नहीं। वे युद्ध-क्षेत्र से बाहर ले आये गये हैं।

नितान्त हताश—स्वर से प्रताप ने कहा,—"यदि अमर के जीवन के बदले भी विजय मिलती तो अच्छा था। किंतु हा मेवाड़! हा, इस समय आप मुझसे क्या करने को कहते हैं?"

उस समय प्रभुपरायण झालाराज ने हाथसे महाराणा के पैर छूकर और आँसू भरकर कहा—"महाराना! इस दीन की इस अंतिम प्रार्थना की अवहेलना न करना। मेरी प्रार्थना ठीक है या नहीं इसका विचार न करना। मै आपके चरणों में आज जो अंतिम विनय करता हूं, उसे आपको मानना ही पड़ेगा।"

प्रतापसिंह—स्वीकार करता हूं।

मानाहसिंह—मेरी मुख्य प्रार्थना यही है महाराना को इस समय समरक्षेत्र का त्याग करना होगा। मेरी दूसरी प्रार्थना यह है मैं इस समय जो कुछ करूंगा महाराना उसमें कुछ आपत्ति न करें।"

महाराना, झालापति की पहली प्रार्थना सुनकर चौंक उठे; कहने लगे-"आपका द्वितीय प्रस्ताव मुझे स्वीकार है; किंतु यह क्या? आप मुझ से जीवितावस्था में समरक्षेत्र त्यागने को कहते हैं?"

मानाहसिंह—नहीं तो और क्या? महाराना के जीवन को ही हम स्वाधीनता समझते हैं। क्या आपका विश्वास है हम मेवाड़ की स्वाधीनता को ध्वंस करने के अभिलाषी हैं?

महाराना नीचे मुख किये रहे। इतने में झालापति के आदेश से महाराना के छत्रधारियों ने झालापति के मस्तक में राजछत्र

धारण किया और वे अपनी सेना और सामंतों के साथ द्विगुण उत्साह से चंडिका का नाम लेकर समर—समुद्र में कूद पड़े! राजछत्र देखकर झालापति को ही महाराणा समझकर मुसलमान उनके ऊपर भूखे व्याघ्र के समान टूट पड़े।

महारानाने उस समय एकबार सुविस्तृत समरक्षेत्र के चारों ओर देखा। जो कुछ देखा, उस दृश्य से उनके आँखसे दो चार अश्रु-बिन्दु निकल कर रक्तराशि में मिल गये। दीर्घनिश्वास त्यागकर महाराणा ने कहा—"भगवन्! ऐसीही तुम्हारी इच्छा है? यह विड़ंबना देखने का क्या कम है? यदि हार जाऊं तो इस जीवन की क्या आवश्यकता है? किंतु जीवन-विसर्जन से भी लाभ क्या? यदि मेरे प्राणों के बदले में भी मेवाड़ की स्वाधीनता की रक्षा हो जाती तो कहना ही क्या था? जिसकी इच्छा होती वही मेरा वध करता अथवा स्वयम् मैं ही छुरी अपने हृदय में भोंकता। मेवाड़ की आशा का ऐसा अंत! नहीं कभी नहीं, प्रताप के जीवित रहते मेवाड़ किसी के अधीन होगा? नहीं, मैं न मरूंगा। मेवाड़ को इस दशा में रखकर कभी न मरूंगा। यह तलवार लेकर कहता हूं, मात: जन्मभूमि! तुम्हें इस दशा मे छोड़कर न मरूंगा, तुम्हारे दुःख को दूर करने से पहले मरूं तो मैं चिरकाल तक नर्क में पड़ा रहूँ। हे देवि! मेरी सहायता करो। भगवन्! मेरी आशा पूर्ण करो।" अश्रुपूर्ण आँखों से प्रतापसिंह ने चेतक को विपरीत दिशा की ओर ले जाने का इशारा किया।

प्रभुकी जीवनरक्षा के लिये झालाराज की मंत्रणा सिद्ध हुई। महाराणा के भ्रम में असंख्य मुसलमान सेना ने उनके ऊपर आक्रमण किया। प्रभु की रक्षा के लिये उस घोर संग्राम में झालाराज ने अपनी इच्छा से अपना ——— किया। मरते समय झालराज ने



अस्पष्ट स्वर में कहा—"भगवन् ! भवानीपति ! प्रतापसिंह की रक्षा करना। मेवाड़ के लुप्त गौरव की वही रक्षा करेंगे।"

स्वदेशवत्सल, प्रभुपरायण झालाराज के जीवन का अंत हुआ। संसार में उनकी अतुलनीय कीर्ति है। सारे पृथ्वी के इतिहास में खोजने पर भी ऐसे महोच्च हृदयों का निदर्शन अति अल्प होगा। धन्य राजस्थान ! धन्य तुम्हारी वीर संतान !

प्रतापसिंह के रणक्षेत्र त्याग करने के साथ ही साथ अवशिष्ट हिन्दू-सेना ने भी समरत्याग किया। बाईस हजार सेना में आठ हजार सेना बची।

इस प्रकार हल्दीघाटी के युद्ध का अंत हुआ। कुरुक्षेत्र के बाद भारत में हल्दी घाटी के समान महारण और हुआ या नहीं इसमें संदेह है, जिस आशा से उन्मत्त होकर तथा जिस साहस से उत्तेजित होकर भारतीय वीर उस दिन समरक्षेत्र में एकत्रित हुए थे, उसका कुछ फल न हुआ। कालसूर्य के अस्त होते होते उस दिन काल नेमि ने अमित-प्रताप प्रतापसिंह को पराजित किया। इस संसार में विधाता की इच्छा के विरुद्ध कौन जा सकता है, कौन जा सका है ?

---

## त्रिविंशति परिच्छेद।

### चेतक

महाबलशाली चेतक ने महाराणा को लेकर शीघ्र गति से प्रस्थान किया। केवल एक मात्र शत्रु के अश्वारोही ने प्रताप का पीछा किया। प्रताप ने उसे न देखा। उस समय उनके हृदय में ऐसी चिंता और यंत्रणा का स्रोत बह रहा था कि उसमें किसी और चीज के लिये स्थान होना असंभव था। थोड़ी दूर जाने



पर उस अनुसरण करने वाले ने पुकारा—"ओ हे नीला घोड़ावाला असवार!"

प्रतापसिंह ने घोड़ा फिरा कर देखा, पीछा करनेवाले स्वयम्, उनके भाई सूक्तसिंह थे। सूक्तसिंह ने बहुत दिन हुए अपना जातीय पक्ष छोड़कर बादशाह का पक्ष लिया था; इसीलिये वे उस समय मेवाड़ के प्रधान शत्रु थे। बहुत दिन बाद अपने भाई सूक्तसिंह को देखते ही महाराणा के हृदय में प्रेम उमड़ आया। सूक्तसिंह नजदीक आकर घोड़े से उतरे। महाराणा ने भी अश्व त्याग किया। हिंसा, द्वेष, शत्रुता, विरोध उस समय दूर हुआ। दोनों भाई मिले—बहुत देर तक आलिंगनबद्ध रहे। कुछ काल चुप रहने के बाद प्रतापसिंह ने पूछा—"भाई। शरीर और मन तो अच्छा है न?"

सूक्तसिंह ने सोचा, प्रतापसिंह ने उसकी हँसी उड़ाने के लिये यह पूछा है। स्वजाति की ममता त्याग कर यवन के साथ मैत्री करने में शरीर और मन की कैसी दशा होती है यह सूक्तसिंह भली प्रकार जानते थे। उन्होंने सोचा प्रताप ने इसी को लक्ष्य कर मेरी हँसी उड़ाने के लिये ऐसा पूछा। सूक्तसिंह ने कहा—"शत्रु के भय से जब मनुष्य भागता है उस समय उसका शरीर और मन अच्छा ही तो रहता है ना?"

प्रतापसिंह इस तिरस्कार को न सह सके। कमर में लटकती हुई तलवार पर उन्होंने एक बार हाथ रक्खा। फिर चित्त के वेग को रोक कर कहने लगे—"सूक्त! जाओ भाई तुमने शत्रु भाव से मुझ से भेंट नहीं की। मेरी भी तुम से विरोध करने की इच्छा नहीं है। जान पड़ता है तुम्हारा हमारा संयोग विधाता की इच्छा नहीं है। प्रार्थना करता हूं, तुम्हारे साथ अब इस जीवन में भेंट न हो।"

उत्तर की प्रतीक्षा न कर प्रताप घोड़े पर चढ़ कर चले। सुक्तसिंह भी बिना कुछ कहे सलीम के पास चले गये।

उस दिन दारुण धूप की गरमी में अत्यंत परिश्रम और अस्त्राघात से निकले हुए रक्त से बिचारा चेतक बिलकुल कातर हो गया था। घावों से उसका समस्त शरीर भरा था, मुख और पाँव के जोड़ श्वेत फेन से भरे हुए थे. तमाम शरीर के असंख्य घावों से खून के निकलने से चेतक शक्तिहीन हो गया था। क्रमशः उसकी साँस रुद्ध होने लगी देह काँपने लगी; पैर देह का भार सहने में दुर्बल हो गये, यंत्रणापीड़ित चेतक को देख कर प्रतापसिंह उतर गये, चेतक ने एक अप्रस्फुट यंत्रणाव्यंजक ध्वनि की। प्रताप चेतक की यह शोचनीय दशा देखकर सिर पर हाथ रख कर उसके पास बैठ गये। चेतक ने सतृष्ण कातर आँखों से प्रतापसिंह की ओर देखा। प्रताप की आँखों से आँसू निकलने लगे। चेतक ही उनकी विपत्ति-संपत्ति में शांति-विग्रह में, हर समय प्रधान सहायक, भरोसा और आनंद था। बहुत बार इसी चेतक ने उनकी भीषण विपद से रक्षा की थी। बहुत बार यही चेतक बिना आहार, बिना विश्राम प्रताप को एक बन से दूसरे बनले में, एक पर्वत से दूसरे पर्वत में लेगया था। कितनी बार यही चेतक अपने जीवन की माया त्याग कर प्रताप को पीठ में लिये हुए एक पर्व्वत की चोटी से दूसरे पर्व्वत में कूदा था। जिस चेतक के साथ रहने पर प्रतापसिंह ने कहीं पर भी अपने को सहायशून्य न समझा, जिस चेतक ने प्रभु के लिये गहन बन, ऊँचे ऊँचे पर्वत, अग्निवत् मरुभूमि, विशाल-काय नदी आदि सब जगह अकुंठित भाव से विचरण किया

था, जिस चेतक ने हाथी, बाघ, भालू, महिष, भीमाकार अजगर वा अस्त्रधारी शत्रुसेना किसी की कुछ भी परवाह न की उसी चेतक का आज यह दुर्दशा! प्रतापसिंह ने चेतक का मुहँ अपनी जाँघ में रक्खा। चेतक ने अत्यंत क्लेश से एक बार मस्तक उठाकर बड़ा कातर व्यंजक शब्द किया। उसकी आँखों के कई आँसू की बूंदें प्रताप के अंग में पड़े। प्रताप-सिंह रोते रोते कहने लगे–"आज राजशून्य, धनशून्य होने पर भी मुझे इतना दुख नहीं हुआ था। चेतक! आज तुम मेरा हृदय बरछे से विद्ध कर चले।"

चेतक मानो यह सब समझ गया। यदि बात करने की शक्ति होती तो आज चेतक न जाने कितनी बातें अपने प्रभु से करता। प्रतापसिंह चेतक का मुख देख देख कर रोने लगे। घोड़े ने भी एक बार प्रभु को देखने के लिये मुख फिराने का यत्न किया। प्रतापसिंह समझ कर उसकी दृष्टि में बैठ गये। घोड़े ने फिर शब्द किया। उसकी देह थर थर काँपने लगी। उसका मस्तक प्रतापसिंह की जाँघ में से गिर गया। चेतक ने फिर शब्द करने की चेष्टा की पर न कर सका। चिरजीवन प्रभु का हितसाधन कर चेतक ने प्रभु के पास ही प्राण त्याग किये। प्रताप का प्रिय अश्व प्राण हीन हुआ। जगत में चेतक प्रताप के आदर का प्रधान वस्तु था। उस चेतक का वियोग महाराना के लिये अत्यंत दुःखद हुआ। वे चेतक के पास बैठे बैठे उन्मत्त के समान रोने लगे। *

* जहाँ पर चेतक की मृत्यु हुई, वहाँ पर उसके स्मरणार्थ एक चौतरा बनाया गया, उसका नाम "चेतक का चौतरा" है। वह जारोळ नगर के समीप है।

# चतुर्विंश परिच्छेद ।

## नवीन तापस ।



हल्दीघाटी के समीप अरावली पर्वत के एक एकांत प्रदेश में एक आश्रम था । उसमें दो सुकुमारकाय मोहन कान्ति के नवयुवक संन्यासी रहते थे । उन दो सन्यासियों में से एक का अंग सौष्ठव, वदनश्री और देह का वर्ण अति चमत्कृत था, दूसरा उतना श्रेष्ठ सुन्दर न होने पर भी सर्वथा सुन्दर कहा जा सकता था । उन दोनों की प्रकृति कोमलता से परिपूर्ण थी तथा उनकी बात चीत अत्यंत धीर और सुमिष्ट थी । संन्यासिद्वय के मस्तक जटाभार से परिपूर्ण थे । चेहरे पर सुदीर्घ दाढ़ी मूछें थीं।

कुमारी ऊर्म्मिला पुरुषवेश से हल्दीघाटी के समरक्षेत्र में उपस्थित थी यह पाठक जानते ही हैं। वही बहुत कष्ट से अमरसिंह और रतनसिंह के मृतप्राय शरीरों को इसी आश्रम में ले आई । यहाँ कुमारी ऊर्म्मिला और वे दोनों संन्यासी यत्नपूर्वक उन दोनों की सेवा-सुश्रूषा में प्रवृत्त हुए । अमरसिंह का आघात बहुत भयानक न था, थोड़ी ही देर में वे होश में आ गये। किंतु रतनसिंह की अवस्था बड़ी चिंता जनक थी । रतनसिंह की कामना मरने ही की थी—वे उसके लिये पूर्ण रूप से तैयार थे। उनका आघात गुरुतर हो चला, उनके जीवन की संभावना में संशय होने लगा ।

होश में आने पर अमरसिंह रतनसिंह की हालत जान गये और चिंता से व्याकुल हो उठे । कहाँ पिता, कहाँ माता,

कहाँ बंधुगण इत्यादि चिंताओं से वे अधिक अधीर होने लगे। ऊर्मिला देवी उन्हें यथाशक्ति स्वस्थ रखने की चेष्टा करने लगी। किंतु उस अवस्था में उनके चित्त का अस्थिर रखना असंभव था। अंत में विवश होकर उनको सब समाचार संग्रह कर बतलाने के लिये ऊर्मिलाने आश्रम त्याग किया। दोनों संन्यासियों ने उसकी अनुपस्थिति में अमर और रतनसिंह की सेवा का भार लिया।

कुमारी के जाने पर अमरसिंह बार बार संन्यासियों के मना करने पर भी रतनसिंह के लिये आंतरिक उद्वेग दिखाने लगे। भाई रतन की अवस्था शोचनीय जानकर उन्होंने दीर्घ निश्वास के साथ कहा-" भगवन्! क्या होगा?"

संन्यासियों में जो बड़ा था वह कहने लगा--" युवराज! आपके शरीर का दशा ठीक नहीं है। आप इस समय यह सब चिन्ताएँ छोड़ दें। विधाता इतना निर्दय नहीं है कि वह हमारी प्रार्थना न सुने।"

अमरसिंह ने देखा, नवीन संन्यासी चुप होगया, किन्तु उसकी आँखों से आँसू की धारा बहने लगी। अमरसिंह ने कहा-" देवलवरराज की बेटी पापीयसी यमुना ही इस सर्वनाश की जड़ है।"

यह सुनकर दोनों संन्यासी चमत्कृत होगये। अमर ने देखा नवीन संन्यासी नितान्त चंचल और उत्कंठित हो उठा। ज्येष्ठ संन्यासी ने पूछा-"यह क्या कुमार! देवलवरराज-नंदिनी वर्त्तमान सर्वनाश की जड़ कैसे है?"

अमरसिंह ने कहा-"क्यों? उसी कलंकिनी के प्रेम में रतनसिंह ने अपना आत्म समर्पित किया था। किन्तु उस दुष्टा ने अपनी सखी

द्वारा रतन को कहला भेजा, 'वह उसकी न होगी'। उसी दिन से रतनसिंह संसार से विरक्त होकर—जीवन की ममता से शून्य हो कर मृत्यु का प्रार्थी हुआ। इसीसे रतन की आज यह दशा हुई।"

नवीन संन्यासी ने दीर्घ निश्वास त्याग कर अस्फुट स्वर में कहा "—आर्य! तब क्या तुम्हारी बात झूठ है।"

ज्येष्ठ संन्यासी कुछ देर तक मुख नीचा कर सोचने लगा, उसकी दोनों आँखें उज्ज्वल हो उठीं। वह कहने लगा—"नहीं युवराज, यह सब आपका भ्रम है। मैंने बहुत पहले इस युवक का भूतभविष्यत गणना कर देखा था, इसका चित्त स्वर्गीय चित्तौड़राज तनया के प्रेम में मग्न है। यह उस कुमारी के सिवाय और किसी का नहीं है, यह शठ और प्रवंचक है।

अमरसिंह ने कहा,—"आप वृद्ध ब्राह्मण और तपस्वी हैं मैं आपसे कुछ न कहूंगा। किंतु यदि यही आपकी गणना का फल है तो जान पड़ता है या तो आपने गणना-शास्त्र का कभी अभ्यास ही नहीं किया है या गणना-शास्त्र अमूलक और अतल जल में फेंक देने लायक है। आप देख रहे हैं यह मरणापन्न वीर है और मैं स्वतंत्र व्यक्ति हूं पर हम दोनों का हृदय एक है। मैं अच्छी तरह जानता हूं कुमार रतनसिंह के हृदय में यमुना के अतिरिक्त और किसी नारी के प्रेम के लिये स्थान नहीं है।"

नवीन संन्यासी ने फिर अस्फुट स्वर में कहा,—"देवी-वाक्य! झूठ बात! हृदय, विदीर्ण होजा।" वह जल्दी से बाहर आया और एक पत्थर में मुहँ के बल गिर कर रोने लगा। ज्येष्ठ संन्यासी ने दीर्घ निस्वास त्याग किया और अत्यंत चिंतित होकर मुँह नीचा किये बैठा रहा। उसके चित्त की ऐसी दशा देख अमरसिंह ने पूछा—"भगवन्! आप

लोग विशेष कर नवीन संन्यासी अत्यंत चिंतित क्यों हो गये हैं। वर्तमान संवाद से आप लोगों का कुछ संबंध होने की संभावना है या नहीं, कुछ जान नहीं पड़ता।"

संन्यासी—"चिंतित-हाँ किसी और कारण से चिंतित नहीं हैं। वीरवर रत्नसिंह की ऐसी दशा देखकर ही हम दोनों चिंतित हैं। मेरा नवीन भाई बड़ा कोमल स्वभाव का है। देखा, दुखित होकर वह न जाने कहां चला गया।"

वह सन्यासी भी यह कर चला गया। उसके जाते समय अमरसिंह ने देखा उसके आंखों से भी आँसू निकल रहे थे। अमरसिंह ने सोचा, इस व्याकुलता का कोई और दूसरा कारण होना संभव है! वे फिर दीर्घ निश्वास त्याग कर सो गये।

---

# पंचविंश परिच्छेद।

## अनुतम।

महासमर के बाद की तीसरी रात्रिको हल्दीघाटी के निकट मुसलमानों के डेरे में बड़ी धूमधाम हो रही थी। उस दिन वहाँ महाभोज की तय्यारियाँ हो रहीं थीं। वह स्थान उस समय आनंद, कोलाहल और गुणगौरभागर्वित वीरगणों के कलरव से परिपूर्ण था। प्रत्येक अपनी ही शक्ति को विगत-युद्ध की जयप्राप्ति का मुख्य कारण बताकर प्रमाण देने में व्यस्त था। जिस सुंदरतानी बनात के मंडपमें शाहज़ादा सलीम, मानसिंह इत्यादि उच्चपदस्थ वीरगण बैठे थे वहाँ भी अहंकार

की नदी बह रही थी। सलीम ने कहा—"प्रताप की कैसी दुर्दशा! वह मेरे ऊपर आक्रमण करने आया था! मेरे ऊपर आक्रमण करना क्या उसका काम है? क्यों अम्बरराज! मैंने उसे कैसा छकाया?"

अम्बरराज मानसिंह सलीम की बात का कुछ उत्तर न देकर कहने लगे,—"यह सब दुर्गम रास्ते मेरे चिरपरिचित हैं; नहीं तो इस युद्ध में जय पाना असंभव था।"

सलीम ने पूछा—"आपने सुक्तसिंह के कुछ समाचार पाये? वे कई दिन से क्यों नहीं दिखाई दे रहे हैं? भाई के अपमान से दुखी होकर क्या वह कहीं निर्जन में रो तो नहीं रहे हैं?

सलीम के कहने के बाद ही सुक्तसिंह ने वहाँ आकर कहा—"शाहजादा का अनुमान ठीक ही है। मैं अपमानित भ्राता के दुख से कातर था इसी से कई दिन तक आप से भेंट न कर सका।"

सलीम ने पूछा—"उस पराजित रण से भागे हुए को भाई कहने में आपको कष्ट नहीं होता?"

सुक्त ने कहा—"प्रताप रण से भागे हैं किंतु पराजित कभी नहीं हैं। हल्दीघाटी-युद्ध में आपने जय लाभ की है, पर इतने ही से न समझिये प्रताप पराजित हो गये। प्रताप का प्रताप चिर संगी है, उनके जीवित रहते उनको हरावे ऐसी किसकी शक्ति है? प्रताप की शक्ति से शाहजादा खूब परिचित हुए होंगे क्योंकि आप उनके आघात से परमेश्वर की कृपा से बच गये हैं।

सलीम ने हँसकर कहा,—"प्रताप के समान चींटी मेरा क्या कर सकती है?"

सुक्तसिंह ने भी तुरन्त उत्तर दिया–" चींटी अपने से छोटे जन्तु का तो नाश कर सकती है।"

सलीम—तुम्हें यदि भय है तो तुम अभी जाकर प्रताप का आश्रय लो।

सुक्तसिंह—हृदय की ऐसी ही आंतरिक इच्छा थी, पर दुःख इसी का है वे इस अधम, कृतघ्न, दुराचारी को क्या अपने चरणों में स्थान देंगे? उन्हीं के आश्रय में जीवन के अंतिम दिन बिताने का संकल्प किया है। शाहजादा, न सोचिये हल्दीघाटीसमर में आपकी जय होने से प्रताप को भी आपने जीत लिया। जब तक प्रताप जीवित हैं तब तक आपकी कोई जय जय नहीं है। केवल मृत्यु ही प्रताप को हरा सकती है तभी आपकी मेवाड़—जय की आशा पूरी होगी। इस समय मैं विदा होता हूं।

वे सलीम को सलाम कर तथा मानसिंह को नमस्कार कर जाने लगे इतने में मानसिंह ने कहा,—" निर्बोध! किसका अभिमान करते हो? बादशाह का आश्रम छोड़कर किसकी शरण जाते हो?"

सुक्त ने हँसकर कहा —" यवन—कुटुम्ब मानसिंह को ही ऐसी चिन्ता शोभा देती है, प्रतापसिंह के भाई को नहीं।"

लज्जा से मानसिंह ने मस्तक नीचा कर लिया। उत्तर की प्रतीक्षा न कर उस रात्रि को सुक्तसिंह ने यवन शिविर का त्याग कर प्रस्थान किया।

सूर्य्यास्त

# षष्ट विंशति परिच्छेद ।

## विवाद का अंत ।

तीन दिन बाद कुमार रतनसिंह की दशा अधिक खराब हो चली। वह दिन भली प्रकार कटेगा, ऐसी आशा न थी। अमरसिंह अच्छी तरह स्वस्थ हो गये थे। वे और कुमारी ऊर्म्मिला निरंतर प्रिय भाई रतन के समीप बैठे बैठे आँसू बहा रहे थे। चारों ओर रास्ते यवनशत्रु से भरे हुए थे इस कारण कोई और आत्मीय आ नहीं सकते थे। ऊर्म्मिला दोनों कुमारों को निरापद तथा स्वस्थ बतलाकर सांत्वना देती थी किंतु स्वयं विपद की संभावना से घबड़ा रही थी। वह नाना प्रकार के कौशल और कठिनता से चिरपरिचित वनपथ पारकर वहाँ आसकी थी। उस निःसहाय स्थान में वही एकमात्र चिकित्सक थी। बचपन ही से वनलता, जड़ी बूटियों के गुणागुण जानने में उसका अनुराग था और उसने असाधारण अध्यवसाय से बहुत कुछ ज्ञान भी प्राप्त किया था। उसकी दवा से रतनसिंह के घाव इत्यादि तो अच्छे हो गये थे किंतु जीवनी शक्ति कौन ला सकता? उसका कारण ही दूसरा था। रोगी की अंतिम दिनों में जो दशा होती है वही दशा रतनसिंह की थी। थोड़ा २ ज्वर था और उसमें वह प्रलाप में आजाते थे, नाड़ी तेज और अस्थिर थी।

संन्यासिद्वय सेवा में तनिक त्रुटि नहीं करते थे। वे उर्म्मिला के कथनानुसार परिचर्या में नियुक्त थे। रतनसिंह प्रलाप में बकने लगे थे—"यमुने!—ओह हल्दीघाटी—कुहकिनी!—मरा!"

अमरसिंह ने अपना मुख रतनसिंह के पास ले आकर उच्चस्वर से कहा,–" रतन, भय किसका ? भाई ! तुम अब शीघ्र ही अच्छे हो जाओगे।"

थोड़ी देर बाद रतनसिंह फिर बोल उठे–" महाराना !– मेवाड़–आ. यमुना ! जाता हूं ! "

इधर पीड़ित की यह दशा थी, उधर संन्यासिद्वय की विशेष कर नवीन संन्यासी की भी दशा बड़ी भयानक थी। वे काँपते और रोते हुए गिरिगुहा के बाहर गये। जाते समय कहते गये—"आह ! आगे क्यों न मालूम हुआ ? अब बचने से क्या लाभ ? "

छोटे संन्यासी के बाहर जाने पर ज्येष्ठ संन्यासी ने भी उसका अनुसरण किया। उन्होंने बाहर आकर देखा नवीन संन्यासी एक पहाड़ की ऊंची चोटी से नीचे गिर प्राण त्यागने की कोशिश कर रहा है। बहुत कष्ट मे ज्येष्ठ सन्यासी ने उसे आत्मघात से बचाया, नवीन संन्यासी बेहोश होकर गिर पड़ा।

स्थिरबुद्धि ऊर्म्मिला संन्यासिद्वय के समाचार जानने के लिये बाहर आई और नवीन संन्यासी को मूर्च्छित देख कर उस की सुश्रूषा में नियुक्त हुई। ज्येष्ठ संन्यासी ने उसे समझाया कि उसका सहचर बड़ा कोमल स्वभाव और करुणार्द्र हृदय का है। रतनसिंह की दशा देखकर ही उसकी ऐसी हालत हुई है। ऊर्म्मिला उसे सान्त्वना देने लगी किंतु उस सान्त्वना का कुछ फल न हुआ। ऊर्म्मिला उसकी यह दशा देख आश्चर्य करने-लगी —संन्यासी का ऐसा देव दुर्लभ हृदय देखकर वह उसे आंतरिक भक्ति और श्रद्धा से देखने लगी। कुछ क्षण मे नवीन संन्यासी के होश में आने पर वे गुहा के भीतर गये प्रवेश करते ही

उन्होंने रतनसिंह का प्रलाप सुना—" ओः ! प्रेम कैसी भयंकर वस्तु ? यमुना-आः, तुम कहां हो ? "

ऊर्मिलाने पूछा,—" कैसी हालत है ? "

अमरसिंह–उसी प्रकार जान पड़ता है, इस समय इनकी बातें कुछ अंथियुक्त हैं।

ऊर्मिला पीड़ित रतनसिंह के पास बैठ गई। ज्येष्ठ संन्यासी रतनसिंह के सिरहाने की ओर और युवा संन्यासी चरणों के समीप बैठ गये।

अमरसिंह ने फिर कहा—" रतन की कोई बात यमुना के नाम से शून्य नहीं है। यमुना ही इस सर्वनाश की जड़ है।

ऊर्मिला—यदि किसी उपाय से यमुना इस समय यहां आ जाती तो शायद कुमार की अवस्था आशा जनक होजाती।

अमरसिंह—यमुना–पापिनी यमुना ! वह अविश्वासिनी, सर्वनाशिनी यहां क्यों आवे ? " उसके आने से क्या उपकार होगा ? उसके देखने और पहचानने से कुमार की अवस्था और बुरी होजायगी।

ज्येष्ठ संन्यासी— युवराज ! कुमारी यमुना के संबंध में आपकी जो धारणा है वह ठीक नहीं। मेरा विश्वास है देवल-वरा ऊलनया यमुना छल किसे कहते हैं यह जानती भी नहीं।

अमर–मेरे वाक्य का प्रमाण यह दुखी मृत्युशय्या में सोया हुआ रतन है।

नवीन संन्यासी—युवराज, मैं जानती हूँ, यमुना का देह, मन और प्राण सब कुछ कुमार रतनसिंह को ही समर्पित था। यदि विधाता के कोप से कुमार रतनसिंह का कुछ अशुभ हुआ तो मेरा दृढ़ विश्वास है यमुना भी एक क्षण न बचेगी।

अमरसिंह ने पहले प्रवीण संन्यासी की ओर लक्ष्य कर कहा,—"देव, आपकी मीमांसा कभी कभी ठीक नहीं होती यह मैं पहले ही जान गया हूँ।" फिर द्वितीय संन्यासी से कहा—" जान पड़ता है आप यमुना को जानते हैं ?"

नवीन संन्यासी–युवराज, आपने कुमार रतनसिंह के मुख से यमुना के स्वभाव का पता पाया है। कुमार के क्रुद्ध होने का यथेष्ट कारण था। सचमुच में हतभागिनी यमुना ही इस सर्वनाश की कारण है। किंतु मुझे अच्छी तरह मालूम है यमुना से अनजान में अपराध हुआ है, अतः वह निरपराधा है। मैं जो कुछ जानती हूं, कहती हूं। महाराज, सुनिये, उसके बाद विचार करियेगा।

यह कह कर संन्यासी ने देवी वाक्य, महारानी की द्वाररक्षिणी का वाक्य, कुमार के साथ यमुना की भेंट, यमुना का उत्तर और यमुना की सखी की बात सब कहकर अंत में कहा,—"मैंने जो कुछ कहा वह सब सच है। अब आपकी क्या राय है?"

कुमारी उर्मिला ने कहा—"यह बात सब सच जान पड़ती है। जान पड़ता है, दोनों के अमूलक संदेह के वश में होने ही से यह सर्वनाश हुआ है।

अमरसिंह–हाय ! यह बात पहले क्यों न खुली ? आज रतन बेहोश है, इस समय यह सुख–संवाद उसे सुनाने के लिये कोई उपाय ही नहीं है।

उर्मिला–युवराज, इस समय कुमारी यमुना को किसी प्रकार यहाँ बुलाना चाहिये। होश में आने पर जब कुमार रतन उसे देखेंगे तो सब रहस्य जान कर उन्हें आशातीत लाभ पहुँचेगा। यदि ऐसा न भी हो तो भी मरते समय इन दो प्रकृत प्रेमियों का मिलन अच्छा ही होगा।

अमरसिंह—कुमारि ! तुम्हारा परामर्श अति उत्तम है किन्तु

वह कैसे होगा ? कहाँ देवलवर कहाँ हल्दीघाटी इस पर भी रास्ते शत्रुओं से भरे हैं।

अमरसिंह की बात पूरी भी न होने पाई थी कि नवीन संन्यासी ने अपनी सब नकली जटा, दाढ़ी-मोंछ उखाड़ कर फेंक दीं और रोते रोते पृथ्वी में गिर कर कहा,—"युवराज, यही अभागिनी पापीयसी यमुना है।"

इसके बाद वह रतनसिंह के दोनों पाँव अपनी छाती में रखकर रोते रोते कहने लगी—'किसकी लज्जा—किसका संकोच ? मेरे प्राणों के प्राण ! मेरे हृदय के हृदय ! यह दासी तुम्हारी चरणाश्रिता है। जीवन में वा मृत्यु में अब यह दासी तुम्हारे चरनों से क्षण भर के लिये भी विलग न करूंगी। मृत्यु का इस दासी को कुछ भय नहीं। मरने के बाद भी तो कैसा सुन्दर जीवन है, वहाँ जरा-मरण के प्रवेश का भय नहीं है, वहाँ भिन्न करने को संदेह नहीं है।

ऊर्मिला और अमरसिंह पहले अत्यंत आश्चर्यित हुए, फिर अविरल धारा से अश्रु बरसाने लगे। रतनसिंह ने चीत्कार की—"यमुना कहाँ है ? प्रेम क्या खेल की चीज है ?"

साथ ही यमुना ने कहा,—"हृदयेश्वर ! दासी आपके चरणों के समीप है।"

रतनसिंह ने एक बार आँखें खोलीं फिर शीघ्र ही बंद कर दीं। अमरसिंह ने उनका हाथ देख कर कहा,—"हालत कुछ अच्छी नहीं है, नाड़ी स्थिर है।"

ऊर्मिला—कुमार ! यमुनादेवी आई है।

रतनसिंह—स्वप्न !—हाँ, यमुना !—तुम कौन हो ?"

रतनसिंह ने आँख खोल कर यमुना की ओर देखा। यमुना कहने लगी—"नाथ, मैं अपराधिनी दासी यमुना हूं !"

रत्नसिंह–य–मु–ना ! हाँ–ओः, प्रतारणा–शठता–ओः

रत्नसिंह ने— फिर आँखे बंद करलीं। ज्येष्ठ संयासी ने भी अपनी जटा फेंक दी थी। वह संन्यासी यमुना की सखी कुसुम थी। कुसुम ने कहा— "लाभ के बदले हानि हुई क्या?"

उर्म्मिला–शीघ्र ही शुभ होगा। इनकी बात चीत में कुछ होश के लक्षण दिखाई दे रहे हैं, यह शुभ चिन्ह है।

रत्नसिंह ने फिर आखे खोल कर चारो ओर दृष्टि फिराई। क्रमशः उनकी यमुना के साथ चार आंखे हुईं। उन्होंने कहा– "आप कुमारी यमुना हैं?"

फिर रत्नसिंह चुप होगये। यमुना ने कहा–"हृदय सर्वस्व! हाँ, मैं ही चरणाश्रिता दासी हूं। अज्ञान में तुम्हे बहुत कष्ट दिया। प्राणेश्वर! तुम से क्षमा माँगने का भी मेरा अधिकार नहीं।"

यह कह कर उन्मादिनी यमुना रत्नसिंह के चरणों में गिरी। रत्नसिंह ने कहा,–भाई, अमर, केवलदरराज तनया यहाँ क्यों? मैं कहाँ हूं?"

अमरसिंह ने उनसे सब बाते कहीं। जिस प्रकार भ्रम के वश होकर यमुना रत्नसिंह के प्रेम में संदेह करने लगी तथा कुसुम ने कुमार की शठता का बदला देने के लिये कुमारी से जो स्वतंत्र विवाह करने के लिये कहा था उसका भी उल्लेख करते हुए अमरसिंह ने सब संक्षेप में और सुकौशल पूर्वक रत्नसिंह से कहा। दुर्बल और क्षीण रत्नसिंह को उठने की ताकत न थी। उनकी आँखो से आनन्दाश्रु निकलने लगे। मुख से आनन्द की ज्योति प्रगट हुई। उन्हों ने कहा–" यमुना! तुम कहाँ हो?"

रोते रोते यमुना रत्नसिंह के समीप बैठी। हँसते हँसते अमरसिंह की ओर लक्ष्य कर कुमारी ने कहा,–"देखिये युवराज, मेरे परामर्श का कैसा शुभ फल हुआ।"

# सप्तविंश परिच्छेद ।

## गायिका ।

कैसा रमणीक स्थान है! सामने ही सरोवर अनन्त आकाश की छाया हृदय में धारण कर हँस रहा है । सरोवर के किनारे-बरमाँति दुर्ग की ऊँची चोटी दिखाई दे रही है । वह दुर्ग मानो जल का हृदय विदीर्ण कर ऊपर उठा है । बड़े बड़े बट, पीपल और इमली के पेड़ सरोवर के चारों ओर खड़े हैं । तालाब के तीन ओर बहुत दूर तक फल-फूल सुशोभित नाना प्रकार की लताएँ सुहा रही हैं । उसके बाद तिल तिल ऊँचे होते हुए पहाड़ से वह सरोवर और उद्यान घिरे हुए हैं । उन पहाड़ से छोटी नदियाँ वृक्षमूल छिपाते करके कल कल कुल कुल शब्द से बह कर उस तालाब में मिल रही हैं, दुर्ग की एक ओर से एक छोटी नदी बह रही है, बालरवि की मनोहर किरणें उस सरोवर में गिर कर उसे रमणीयता का भंडार बना रही है ।

इस जनशून्य स्थान में यह किसका कंठस्वर है ? इस मधुमय ऊषा में संगीतध्वनि से किसने इस वनभूमि को उन्मत्त कर दिया ? ऐसे जनशून्य स्थानमें असमय रमणी कंठनि सृत संगीत ध्वनि क्यों संभव हुई ? गायिका कुमारी ऊर्म्मिला है वह दुर्ग के पीछे एक शिलाखंड पर बैठी हुई गा रही है उसकी खुली हुई केश राशि अव्यवस्थित भाव से उसकी पीठ को समाच्छन्न कर शिलाखंड को भी ढक रही है । उसकी देह में सौन्दर्य-साधक आभूषण नहीं है, वस्त्र भी मलिन है । सुन्दरी उस उपलखंड में बैठी हुई गा रही है ।

ऊषे ! करके सुन्दर शृंगार।
आज किसे देने आई है, किरणों का उपहार ॥
नाश न कर सकती है यदि तू, भारत का तम-भार।
तब क्यों नितप्रति मुख दिखलाती, आकर उसके द्वार ॥
आभामय निज विमल बदन से, करके हास-विलास।
क्या अभागिन भारत माँ का, करती है उपहास ?
निज हाथों से जगा रही तू, नित्य निखिल संसार।
क्या न जगा सकती री निर्दय ! भारत का परिवार ?

संगीतध्वनि से कुछ देर के लिये वनभूमि निस्तब्ध होगई। पक्षीगण कुछ देर के लिये शब्द करना भूल गये। एक व्यक्ति समीप पेड़ों की ओट में खड़ा हुआ यह करध्वनि सुन रहा था। संगीत सुनते,सुनते उसकी आँखें भर आईं। गीत समाप्त होने पर वह वस्त्र से आँखों को पोंछ सुन्दरी के निकट जाकर धीरे धीरे बोला,—"ऊर्मिले ! यदि तुम्हारी यह यन्त्रणा दूर कर सकता तो तभी जीवन सार्थक था।"

कुमारि ने हताश भाव से आगन्तुक की ओर देख, फिर उनका हाथ पकड़ कर कहा,—"अमर ! विधाता की क्या ऐसी ही इच्छा थी ?"

अमर-नहीं देवि ! विधाता की ऐसी इच्छा नहीं। स्वर्ग के देवता भी आकर प्रतापसिंह के जीवित रहते मेवाड़ की भाग्य लतिका को छिन्न नहीं कर सकते। घटनाचक्र में पड़ कर मेवाड़ की यह दुर्दशा हुई है किंतु मेवाड़ के यह बुरे दिन सदा न रहेंगे।"

"तुम्हारा कहना ठीक हो, भवानी तुम्हारी आशा पूरी करें।"

दोनों के कुछ देर चुप रहने पर, अमरसिंह ने कहा,—"कुमारि ! तुम्हारा यह वेश न बदलेगा क्या ?

कुमारी ने दीर्घ निश्वास के साथ कहा-" यदि भगवान कभी सुदिन दिखावेंगे तो तभी यह वेश बदलूंगी, नहीं तो जीवन पर्यंत नहीं। पूज्यपाद महाराना प्रतापसिंह की पवित्र आत्मा मर्मान्तिक यातना भोग रही है, प्राणाधिक प्रियतम अमरसिंह' —कहते कहते कुमारी ने लज्जापूर्ण दृष्टि से अमर की ओर देखा आंखों से आंसू गिरने लगे। कुछ देर चुप रहकर कहने लगी,- "अमरसिंह के हृदय में नित्य शत बिच्छू डंक मारते हैं। चिर-समादरणीय महाराणा सपरिवार प्राणों के भय से सशंकित हैं, सुकुमार राजशिशु अन्नाभाव से पीड़ित हैं। और मैं सुन्दर वेश से शरीर की शोभा बढ़ाऊँ ? मैं प्रतिज्ञा करती हूं जब तक मेवाड़ के सुख सौभाग्य सूर्य का पुनरोदय न होगा तब तक इन केशों की वेणी न बांधूंगी। हल्दीघाटी युद्ध के बाद तुरन्त यवनों ने कमलमीर पर अधिकार किया है। हमारी दुर्दशा की चरमावस्था का आरंभ हो गया है। इस समय हम वनवासी हैं। हमारा घर नहीं, ग्राम नहीं, नगर नहीं दुर्ग नहीं। इस समय हम दस्यु और अपराधी के समान वन वन छिपकर प्राण बचा रहे हैं। हाय ! अमर ! जान पड़ता है हमारी इस दुर्दशा का अंत नहीं है।"

अमरसिंह शिर नीचा कर सुन रहे थे। बात पूर्ण होने पर कहने लगे-"हताश न हो ऊर्मिले ! मेवाड़ का यह दुर्दिन सदा न रहेगा।"

ऊर्मिला—मुसलमानों के क्या समाचार हैं ?

अमर—सुनने में आया है, आज देवलवर पर अधिकार जमावेंगे।

ऊर्मिला-महाराणा कहाँ हैं ?

अमर—कल रात कई भील उनको निर्विघ्न निविड़ वन में लिया आए हैं।

ऊर्मिला—ईवलवर पर आक्रमण करने का समाचार उनको मालूम है?

अमर—हाँ।

ऊर्मिला—उन्होंने कोई नवीन आदेश नहीं दिया?

अमर—नहीं, उनका तो वही आदेश सदा बलवान है। मेवाड़ के समस्त ग्राम और नगरों में एक भी आदमी न रह सकेगा। सब को छिपकर जंगल में रहना होगा। मुसलमान धन जन शून्य मेवाड़ को लेकर जो चाहें सो करें। यही महाराणा का आदेश है। इसी के अनुसार काम भी हुआ है। समस्त मेवाड़ के नगर और ग्रामों में खोज करने से एक राजपूत—बालक भी न मिलेगा। मेवाड़ इस समय श्मशान बना है।

ऊर्मिला—कुमारी यमुना इतने दिन से कहां है?

अमर—वह वृद्ध देवलचाराज के साथ वन में कुशल पूर्वक है।

वे इस प्रकार कथोप कथन में मग्न थे कि इतने में कुछ दूर एक शब्द हुआ। अमर और ऊर्मिला ने उस ओर कान दिये। फिर वैसा ही शब्द हुआ। अमरसिंह ने भी अपने मुंह में अंगुली डालकर वैसा ही शब्द किया थोड़ी ही देर में पर्वत-शिखर पर एक सशस्त्र भील की मूर्ति दिखाई दी, अमरसिंह ने उसे निकट आने का संकेत किया. भील ने निकट आकर उन्हें प्रणाम कर कहा—"महाराणा आपका स्मरण करते हैं।"

अमर—चलो, चलता हूं।

भील आगे बढ़ा। शीघ्र ही कुमार ने उसका अनुसरण किया।

# अष्टाविंशति परिच्छेद ।

## सहिष्णुता की हद



एक साल के बाद दूसरा साल बीतता गया। प्रतापसिंह के भाग्य-सरिता की धारा फिर न फिरी। विधाता की कैसी विडम्बना है! समय की कैसी विरुद्ध गति है! अवस्था की कैसी क्षणभंगुरता है! महाराणा प्रतापसिंह सपरिवार बनवासी हैं। बैठने को आसन नहीं, सोने को शय्या नहीं, खाने को भोजन नहीं, बरतन नहीं, पहिनने को वस्त्र नहीं। रहने का स्थान घने जंगल से घिरा हुवा, आने जाने को जहां रास्ते नहीं, वह भी निश्चित नहीं, आज यहां तो कल वहां। अभी महाराज अनेक क्लेशसंचित भोजन करने बैठे तो अभी समाचार आया शत्रुगण उनकी खोज करते समीप ही आ रहे हैं। मुख का ग्रास छोड़ना पड़ा, बच्चे रो उठे। प्रताप उन रोते हुए बालकों को गोद में लेकर प्राणाधिक प्रणयिनी का हाथ पकड़कर उस बनको छोड़ दूसरी जगह चले। इस प्रकार दुःसह कष्ट सहते हुए प्रतापसिंह बन बन भटक रहे हैं। एक स्थान में दो बार से अधिक आहार करने ही नहीं पाते। अधिकांश दिन वे उनकी रानी और राजकुमार अनाहार ही रहकर बिताते हैं। महाराना की दुर्दशा की सीमा नहीं। संसार में उनके समान तेजस्वी दृढ़प्रतिज्ञ व्यक्ति का मिलना अति दुर्लभ है। इसी विजातीय के दिये हुए कष्ट से ही उनका नाम संसार में अनंत के लिये गौरवान्वित हुआ है। यही सारी यातनाएं उनकी सहन

शीलता की प्रबल परीक्षाएँ हैं—उनकी अदमनीयता की महान साक्षी हैं।

कुमारी ऊर्म्मिला भी आजकल राजपरिवार के ही साथ, बनबन भटक रही है। महाराना और महारानी के शरीर की अवस्था ठीक नहीं है। ऐसे समय कोई परिचारिका न रहने से उनकी रक्षा होनी असंभव थी। ऊर्म्मिला ने प्रसन्न होकर उनकी सेवा का भार अपने ऊपर लिया। महाराणा उसके व्यवहार से, उसकी सेवा-सुश्रूषा से, उसके अकृत्रिम देशानुराग से अत्यंत आश्चर्यित हुए हैं। वे उसको पुत्री के समान मानते थे। कुमारी के साथ अमरसिंह का विवाह होना स्थिर हो गया है। किंतु ऐसी अवस्था में कोई पुत्र-कन्या का विवाह नहीं कर सकता था, ऐसी महाराना की आज्ञा थी। प्रताप सिंह स्वयं अपनी ही आज्ञा भंग नहीं कर सकते थे। इस कारण उस शुभ विवाह में अभी तक विलंब हो रहा था। ऊर्म्मिला को सब आत्मीयगण राजवधू की दृष्टि से देखते थे और वैसाही सम्मान करते थे।

शैलम्बरराज और रानी पुष्पवती, देवलवरराज और कुमारी यमुना सभी उस गहन वन में दिन बिता रहे थे। कुमार अमरसिंह और रतनसिंह बनबन भ्रमण कर सब की खोज लेते थे और एक दूसरे का समाचार परस्पर विदित कराते थे। और इन भीलगणों का महत-हृदय! यह जंगली, अशिक्षित, असभ्यजाति इन तेजोगर्व्वित राजपूतों को अपने ही जाति-कुटुम्ब का समझ कर उनकी सेवा और रक्षा करते हैं।

दोपहर का समय है। महाराना एक वृक्षमूल में बैठकर

सोच में पड़े हैं। समीप ही और दो पेड़ों की जड़ में महारानी संतानगण और ऊर्म्मिला बैठे हैं। महाराना, रानी और ऊर्म्मिला ने दो दिन से कुछ नहीं खाया है। प्रतापसिंह घोर चिंता से दुखी हैं। वे सोच रहे हैं, क्या होगा? मेवाड़ की गौरवलक्ष्मी न रही। तब इस जीवन की क्या आवश्यकता? हाय! अंतिम दिनों में मेवाड़की यह दुर्दशा देखकर जाना पड़ा, इसके लिये कुछ भी न कर सका। यह शरीर धारण कर, यह उन्नत राजपद लाभ कर भी स्वजाति की स्वाधीनता संस्थापित न कर सका। यह जीवन व्यर्थ! यह देह व्यर्थ! मेवाड़ की स्वाधीनता लुप्त हो गई, मेवाड़ वासी वनवासी हो रहे हैं मेवाड़ श्मशान बना है! मेवाड़ की यह दशा देखी किंतु कुछ भी न कर सका। मुझे धिक्कार है। विदेशी मेवाड़ के मस्तक में पदाघात करेंगे, मेवाड़ के देवी देवताओं का उपहास करेंगे, मेवाड़ की राजलक्ष्मी विदेशियों के अंक में शयन करेगी–यह सब जानता हूं, किंतु इसके लिये कुछ उपाय न कर सका। भगवन्! इस पापी प्रताप के लिये दूसरे भयंकर नरक की रचना करो। मेवाड़ का राजवंश न रहेगा, बाप्पाराव की संतान विदेशियों की दास होवेगी, मेवाड़ का राजपरिवार अन्न के लिये दुखी होगा, मेवाड़ की कुलभामियाँ अपना सतीत्व न बचा सकेंगी, मेवाड़ का धर्म्म, नीति और समाज विदेशियों द्वारा कुचला जावेगा। हाय! भगवन्! यह सब देखने

हीं की क्या प्रताप का जन्म हुआ ? नहीं, नहीं–यह न होगा। प्रतापसिंह मेवाड़ की इस दुर्दशा का अंत किये बिना न मरेगा। प्रतापसिंह का जीवन इतना सारहीन अपदार्थ न होगा। प्रतापसिंह के द्वारा मेवाड़ का कोई न कोई उपकार अवश्य होगा। अकबर बार बार अनुरोध करता है, यदि मैं केवल एक बार वचन द्वारा ही यवनों की अधीनता स्वीकार करूं तो मेरे समस्त दुःखों का अंत हो जावेगा, यवन मेवाड़ से चले जायंगे और मेवाड़वासियों के भाग्य का सूर्य फिर चमकने लगेगा। कर न देना होगा–अधीन न रहना होगा सिर्फ मुझसे एक बार अधीनता स्वीकार करनी पड़ेगी। किंतु क्या ऐसा संभव है ? नहीं, नहीं–प्राण रहते इन सामान्य क्लेश के लिये, शारीरिक सुखके लोभ से प्रतापसिंह कभी यवनों का दासत्व स्वीकार न करेगा। किसका क्लेश ? किसकी यातना ? यदि होसके तो अपने बाहुबल से स्वतंत्रता प्राप्त करूंगा, यदि न हो सकेगा तो प्रचंड आग में जल कर प्राणत्याग करूंगा।

प्रतापसिंह जब इस प्रकार चिंतित हो रहे थे उसी समय बाल-कंठ-निःसृत एक मर्मवेदी चीत्कार ने उनका ध्यान तोड़ दिया। उन्होंने चमक कर उस ओर मुंह किया तो देखा, उनकी चम्पकदाम सदृश, पंचवर्षीया, नवनीतविनिंदित कोमलांगी लड़की धूल में लेटी हुई रो रही है। प्रतापसिंह ने कोमल स्वर से पूछा–“ कुमारि ! क्या हुआ ? ”

पिताके इस प्रश्न पर कुमारी और भी रोने लगी। महाराणाने कुमारी के पास जाकर स्नेह से उसे गोद में उठाकर उसका वदन चुम्बन किया और उसकी आँखों को वस्त्र से पोंछ कर

पूछा,—"क्यों क्या हुआ ?"

कुमारी फिर रोते रोते अत्यंत शोचनीय तथा सुमिष्ट कंठ से गद्गद् होकर बोली—"पिता—बिलाव—" अधिक न कह सकी। अधिक रोने के कारण उसका कंठ रुद्ध हो गया था।

प्रतापसिंह ने फिर पूछा—"बोलो बेटी बिलावने क्या किया?"

कुमारी ने रोते रोते कहा—"बिलाव मेरी घास की रोटी छीन ले गया।"

प्रतापसिंह—यह क्या ?

कुमारी फिर कहने लगी—"पिता अब मैं शाम को क्या खाऊँगी ? कल एक वक्त कुछ नहीं खाया। आज भी कुछ खाने को न मिलेगा सोच कर मैंने इस समय आधी रोटी खाकर आधी शाम के लिये रख छोड़ी थी। पिता ! बिलाव मेरी वही रोटी छीन ले गया। बाबा ! बिलाव को मार कर मेरी रोटी छीन ला दो।"

बात समाप्त कर कुमारी फिर रोने लगी। प्रतापसिंह ने मर्मान्तक स्वर में कहा—"हा भगवान !" फिर कुमारी को गोद से उतार उसी पेड़ के पास जाकर बैठ गये। उस समय उनकी आँखें लाल हो रही थीं, आँखों की तारिकाएँ ऊपर की ओर थीं, मुख बिल्कुल मुरझाया हुआ था। इधर थोड़ी ही देर में उनकी मूर्त्ति उन्मत्त के समान हो गई थी।

जब प्रतापसिंह उस पेड़ के पास पहुँचे तो मंत्री भवानी-सहाय वहाँ पर उपस्थित थे। जिस समय प्रताप कुमारी के रोने का कारण पूछ रहे थे, उसी समय मंत्री वहीं पर आगये थे। पर प्रतापसिंह ने मंत्री को देखकर भी न देखा। वे दांत पीस कर कहने लगे—"बस अब कुछ काम नहीं। इस

गौरव की क्या आवश्यकता है ? किसके लिये मैं यह दारुण क्लेश सह रहा हूं ?–मेवाड़ के लिये, स्वजाति के लिये ? मेवाड़ रसातल में जावे, मेरा उससे क्या मतलब ? मैं आज ही बादशाह को पत्र लिखूँगा, मैं आज ही उनसे स्वाधीनता की भिक्षा मांगूंगा और शीघ्र ही निर्विघ्न हो जाऊँगा। यह घोर यातना अब न सहूँगा। बादशाह की अधीनता में दोष क्या ? यदि कुछ दोष है भी तो उसमें कुछ वश नहीं। सारी राजपूत-जाति यदि उस दोष–समुद्र में डूब गई है तो मैं क्यों न डूबू ? वे तो सुख से हैं, स्वच्छंद हैं, और मेरे गर्व का यह परिणाम ! विधाता ! तुम्हारी यही इच्छा थी ? गौरवशाली राणावंश आज कलंक–सागर में डूबेगा ? सब विधाता की इच्छा ! मान–अपमान, यश–अपयश अपनी इच्छा से पैदा नहीं किया जाता। विधाता ने मेरा मान न रक्खा, उसकी इच्छा के विरुद्ध जाने से क्या फल होगा ? आज ही बादशाह को पत्र लिखूँगा। उनकी अधीनता स्वीकार करूंगा। समस्त संसार भी मेरा विरोधी हो जाय मैं किसी की कुछ न सुनूंगा। राज्य की क्या जरूरत है ? धन संपत्ति किसके लिये ? गौरव क्यों ? स्वाधीनता की क्या आवश्यकता ? यदि मेवाड़वासी मुझे न चाहें तो वे दूसरा राजा चुन लें ! यह हतभाग्य प्रताप उनका अधीश्वर होना नहीं चाहता मैं सामान्य परिश्रम से जीविका उपार्जन करूंगा। मेवाड़ छोड़कर दूसरी जगह चला जाऊंगा, कहीं भी अपने को मेवाड़वासी न बतलाऊंगा। इस कष्ट के सिवा मुझे और सब सहना स्वीकार है”

महाराना की बात समाप्त होने पर मंत्री ने उनके सन्मुख होकर यथाविहित अभिवादन पूर्वक कहा—

“महाराना जी—”

प्रताप ने बाधा देकर कहा—"मंत्रि—नहीं—भवानि ! अब मैं तुम लोगों का महाराना नहीं हूं। वह गौरव मेरे उपयुक्त नहीं। तुम समस्त मेवाड़वासियों से जाकर मेरे बदले कहो कि प्रतापसिंह, अयोग्य, अक्षम, घृणित और अधम है। उसने अपने आप यह उच्च सम्मान छोड़ दिया है, उससे किसी सुयोग्य व्यक्ति को अपना अधीश्वर चुनो।"

मंत्री नतमस्तक हो खड़ा रहा। उसकी आंखों से दो बूँद आंसू पृथ्वी पर टपक पड़े। प्रतापसिंह ने फिर कहा—"भवानि ! सदा के लिये मुझे विदा दो। मेरी ममता छोड़ो। मैं अधम हूं—तुम्हारा स्वामी होने के योग्य नहीं हूं।"

भवानी ने रोते रोते महाराणा के चरण पकड़ लिये। प्रतापने मंत्री को उठाकर कहा—"भवानि ! मैंने जयकी दुराशा छोड़ दी है। जय–पराजय बहुत दूर की बात है। मैं अब यह कष्ट नहीं सह सकता। मैं राजपद के अयोग्य हूं। भाई, मुझे क्षमा करो। मेवाड़वासियों से मुझे क्षमा करने को कहना। अब अतिम्बार मेरे लिये कृपा कर स्याही, कागज और लेखनी ला दो।

मंत्री जानते थे पूर्व का सूर्य पश्चिम में उदय हो जाना पर महाराना अपना संकल्प कभी न छोड़ते। ऐसे दृढ़ संकल्प महाराना ने जब उक्त विचारों को अपने हृदय में स्थान दिया है तो उनको युक्ति या बुद्धि द्वारा दूर करना असंभव है। अतः मंत्री किंकर्त्तव्य विमूढ़ होकर महाराना के सन्मुख घुटने टेके हुए और हाथ जोड़े हुए स्थित रहे। महाराना ने फिर कहा—"भवानि मेरी सहनशीलता की हद को तोड़ कर क्लेश बहुत दूर चला गया है। गौरव या कीर्त्ति की

आशा से अब हृदय को स्थिर नहीं रख सकता हूं। सदा तुमने जिसके अनेक उपकार किए आज लिखने की सामग्री लाकर उसका अंतिम उपकार करो। इसके बाद तुमसे कुछ कहने का मेरा अधिकार न रहेगा।"

मंत्री वहां से चुपचाप गये और शीघ्र ही लेख्य-सामग्री लाकर उपस्थित हुए। प्रतापसिंह ज्योंही लेखनी लेकर पत्र लिखने बैठे उनकी आंख से दो आंसू निकल कर पत्र के ऊपर गिर पड़े। आँखें पोंछ कर वे फिर लिखने लगे, थोड़ा लिख लेने पर उन्होंने मंत्री से फिर कहा-"भवानि ! एक उपकार और करो, किसी एक भील योद्धा को बुला लाओ।

प्रतापसिंह ने पत्र लिख कर समाप्त किया। मंत्री जाकर एक सबल भील को ले आए। भीलने दूर ही से महाराणा को प्रणाम किया। महाराना ने उसके निकट जाकर कहा,-"सुनो वीरवर !-तुमने अनेक समय बहुत उपकार किये हैं आज एक उपकार तुम्हें और करना होगा। यह पत्र बादशाह अकबर के हाथ में देना होगा। वे आज कल आगरा में हैं। तुम यह पत्र न और किसी को देना न इसके विषय में कुछ कहना। इसके ऊपर जो लिखा है उसे देख कर तुम्हें कोई न रोकेगा।

योद्धा इस प्रकार राजाज्ञा सुनकर विस्मित हुआ और प्रणाम कर विदा हुआ। जहाँ तक देखा जाता था महाराना ने उस भील को अतुलसंपत्ति हारी डाकू के समान जाते हुए देखा। जब दूत आँखोंकी ओट में हो गया तो महाराना कहने लगे मेवाड़ ! आज तेरी समस्त आशाएं नष्ट हुईं। राजस्थान ! तुम्हारा गौरव शेष हुआ। उदयपुर ! तुम्हारी महिमा का अंत हुआ।

मेवाड़वासियो ! आज तुम्हारा चिर गौरव खोगया। और प्रताप-सिंह ! आज तुम्हारी मृत्यु हुई ! " कहते कहते उनके ललाट से पसीना गिरने लगा, दोनो पांव कांपने लगे शरीर शक्तिशून्य हो गया। अंत मे बेहोश होकर मेवाड़ेश्वर प्रतापसिंह पत्थरों से पूर्ण भूमि पर गिर पड़े उनके परिवार गण निकट आकर सुश्रूषा करने लगे। बालक-बालिका व्याकुलस्वर से चिल्लाने लगे। मंत्री थोड़ी दूर पर पागल के समान बैठकर रोने लगे। थोड़ी देर में जब महाराना को होश हुआ। कुमारी उर्मिलाने कहा— " राजपूतों की आशा ! उठो। आपके रहते मेवाड़ की किसी प्रकार की दुर्दशा नहीं हो सकती। मेवाड़ का यह दुर्दिन सदा न रहेगा। "

प्रतापसिंह ने होश में आते आते उर्मिला के वाक्य का अंतिम अंश सुनलिया था, उन्होंने कहा—"यह दैववाणी किसकी है ? वत्से ! तुम्हारा वाक्य सफल होवे। "

## नवविंशति परिच्छेद।

### प्रतिघात

जिस प्रकाण्ड मरूभूमि ने समस्त राजपूताना को घेर रक्खा है उसके एक गहन वन में बहुत लोग बैठे हैं। महाराना प्रतापसिंह, अमरसिंह, शैलम्बर राज, देवलवर राज, मंत्री भवानी तथा सहस्र राजपूत सेना सपरिवार उस गहन कानन में बैठे हैं। महाराना ने बादशाह को पत्र लिखने के बाद स्वजातीय श्रेष्ठ गणों को बुलाया। सब ने रोते रोते महाराणा के चरण पकड़ उस विचारको छोड़ देने की प्रार्थना की। सर्व साधारण के

मत के अनुसार अंत में यह ठहरा कि यवन के दास होने की अपेक्षा स्वदेश की माया त्यागकर देश देशान्तर को चलाजाना अच्छा है। मरुभूमि पार कर सिन्धु नदी के समीप किसी स्थान में जाकर उपनिवेश स्थापित करना ही सब ने निश्चय किया। उसी के लिये मेवाड़वासी आज देश का त्याग कर इतनी दूर आये हैं। किसी ने किसी से न अनुरोध ही किया न कहा ही। जिनकी आने की इच्छा थी वही आये।

बादशाह अकबर प्रतापसिंह का अधीनता सूचक पत्र पाकर आनंद में अत्यंत मग्न हुए। किंतु प्रतापसिंह का हृदय-स्तम्भ टूट जाय पर किसी के आगे नीचा होने वाला न था। अकबर ने बाप्पाराव के वंशधर को कुचल कर कलंक के समुद्र में डुबाना चाहा था यह न हुआ तेजस्वी राजपूत वीरों ने अधीन होने की अपेक्षा देश का त्याग करना ही निश्चय किया। प्रतापसिंह ही इस काम में उनके नेता थे। आज वही राजपूत उस गहन वन में बैठे हैं। एक पग आगे होने ही से अब मेवाड़ हमेशा के लिये उनसे छूट जायगा। सिर्फ एक कदम आगे बढ़ने से ही उनका उनके प्यारे चित्तौड़ से हमेशा के लिये नाता टूट जायगा। एक पग अग्रसर होने ही से उनके चित्तौड़ के ऊपर उनका कोई भी स्वत्व न रहेगा, इसी लिये राजपूत गण जन्मभूमि के चरणों में अंतिम स्नेहाश्रु उपहार देने के लिये सीमान्त प्रदेश में आये हैं। उस घने जंगल में ज़मीन पर महाराना और उनके चारों ओर यथाविधि और राजपूत बैठे हैं॥

पहले पहल महाराना ने कहा—सुनिये राजपूतगण! आज से हम लोग जीवन की जिस गति का अनुसरण करेंगे कहने की आवश्यकता नहीं—उससे अधिक दुःखद वस्तु

मनुष्य जन्म में और कुछ नहीं हो सकता। जो कुछ हो, मेरी इच्छा तुम्हें कुछ स्मरण दिलाने की है। हमारा यह कार्य्य हमारे गौरव को ही बढ़ावेगा। अवश्य ही इससे आप लोगों को एक ओर बहुत कष्ट पहुँचेगा किन्तु दूसरी ओर इससे आपको बहुत शांति और आनन्द मिलेगा। अतएव भाइयो! सदा याद रखना हमारी यह कठिन प्रतिज्ञा सुदृढ़ रहे। हमारे हृदय की एकता एक क्षण के लिये भी बिन्दु मात्र शिथिल न होने पावे। इसी के लिये मैं अब भी कहता हूं, जिनका हृदय इस दारुण दुखके सहने को तय्यार नहीं है, जो चित्तोड़ की माया नहीं छोड़ सकते, वे इसी समय मेरा साथ छोड़ दें अथवा कोई इससे अच्छी युक्ति हो तो उसका प्रस्ताव करें।"

सहस्राधिक राजपूत एक साथ चिल्ला उठे "कुछ भी हो हम महाराना का साथ नहीं छोड़ेंगे। वनमें घोर शब्द हो उठा। केवल एक व्यक्ति था जो उसमे योग नहीं दे रहा था। उसका चित्त किसी दूसरी ही ओर था। वह व्यक्ति दारुण चिंता से व्याकुल था। वे मंत्री भवानी थे। राजपूतों की चीत्कार ध्वनि उस अरण्य को कंपित कर गिरिकंदरों को प्रतिध्वनित कर, उस मरुस्थली की एक सीमा के दूसरी ओर चली गई और उस वन में फिर निस्तब्धता का राज्य हुआ। सहस्र राजपूत अवनत मस्तक हो बैठे हैं उनकी आंखों से अविरत ज्वाल निकल रही है, हृदय में उससे भी अधिक बिजली दौड़ रही है। सब चुप हैं पाषाण मूर्त्ति के समान स्थिर और निश्चल हैं। सहसा शान्तिभंग कर मंत्री भवानी उठकर महाराना के चरणों में गिरे और कहने लगे,—

"राजन! दास का एक प्रस्ताव है, आप सब ध्यान देकर सुनें। आज तक समुचित अवसर न पाया इसीसे कुछ नहीं कह सका

मेरा यह दोष क्षमा करियेगा ?"

महाराना ने कहा—" मंत्री भवानि ! तुम्हारा दोष हो या न हो सब कुछ क्षम्य है " यह कह कर महाराना ने मंत्री का हाथ पकड़ कर बैठाया।"

भवानी ने कहा—"सुनिये राजपूत गण ! यह अभागा भवानी अतुल पैतृक संपत्ति का अधिकारी है। जीवन में कभी मुझे उस धन की जरुरत न हुई इसीसे वह खर्च भी न हुआ। उस धन से बीस हजार मनुष्य बारह वर्ष तक सुख स्वच्छंदतासे दिन बिता सकते हैं। उस धन में मेरा कुछ अधिकार नहीं। प्रजाका धन-जन—जीवन सब राजा ही का है। राजा आवश्यकता पड़ने पर उसे सहज ही ले सकते हैं। मै अपनी यह अतुल संपत्ति देशके हित भवानी का नाम स्मरण कर प्रसन्नता से राना के चरणों में रखता हू. इसमें अब मेरा कुछ अधिकार न रहा। चित्तौड़ में मेरे भग्नावशेष भवन के नीचे यह सब धन गड़ा है।"

राजपूत बोल उठे—" मंत्रिवर आपका जीवन सार्थक हुआ आप राजपूत जातिके गौरव हैं। आपकी इस कीर्ति की तुलना नहीं। जब तक चंद्र-सूर्य रहेंगे आपका यश पृथ्वी से लुप्त न होगा।

मंत्री ने फिर कहा—" सुनिये राजपूतगण ! मेरी राय है इस संपत्ति से फिर सेना इकट्ठी कर क्रमशः शत्रु से अधिकृत मेवाड़ के दुर्गों को लेलिया जाय। मनुष्यों का विधाता जितना विमुख होता है वह हमारे लिये हो चुका है। अब हमारी उन्नति होगी। अधः पतन के दिन गये। अब हमारी जय अवश्य होगी।"

सहस्त्र राजपूतों ने फिर आकाश गूँजाते हुए कहा—"अवश्य अवश्य ! अवश्य !

जब राजपूत इस प्रकार नवीन उत्साह-सागर में निमग्न हो रहे थे हठात् एक मुसलमान वहां पर आया। सबकी दृष्टि उसकी ओर गई। मुसलमान सैनिक ने आकर यथाविहित सन्मान पूर्वक कहा—"वीरगण! मुझे देख कर कोई विरुद्धभाव मन में न लाइये। मैं बीकानेर के भूतपूर्व अधिपति, बादशाह के वर्त्तमान राजकवि पृथ्वीराज महाराज का दूत मात्र हूं।" यह कह कर उस मनुष्य ने अपने वस्त्रों में से एक पत्र बाहर निकाल कर मंत्री के हाथ में दिया। मंत्री ने उसे महाराना के हाथ में दिया। महाराना ने पत्र खोल कर पढ़ा—

* "अकबर समद अथाह, सूरापण भरियो सजल।
मेवाड़ो तिण माँह, पोयण फूल प्रतापसी॥ १॥
अकबर एकण वार, दागल की सारी दुनी।
अण दागल असवार, चेटक राण प्रतापसी॥ २॥

---

* पृथ्वीराज के इस पद्यबद्ध मूल पत्र की पूरी प्रति लिपि कहीं नहीं मिलती जो कुछ थोड़े से दोहे और सोरठे मिलते हैं वे यहाँ उद्धृत किए जाते हैं। आज भी राजपूत लोग इस कविता को बड़े आनंद और अभिमान से पढ़ते हैं। पाठकों की सुविधा के लिये इनका भावार्थ हम यहां पर लिखते हैं—

१—अकबर के वीरत्व रूपी अथाह समुद्र में सब डूब गये केवल मेवाड़ पति प्रतापसिंह कमल के फूल के समान उसके ऊपर खिले हुए हैं।

२—अकबर ने एक बारगी समस्त संसार अपने अधीन कर लिया परन्तु केवल चेतक घोड़े के सवार प्रतापसिंह की ही मर्यादा अक्षुण्ण रही।

अकबर घोर अँधार, ऊँघाणाँ हिन्दू अवर।
जागे जगदातार, पोहरे राण प्रतापसी॥ ३॥
हिन्दूपति परताप, पति राखो हिन्दूआणरी।
सहो विपत संताप, सत्य शपथ करि आपणी॥ ४॥
चोथो चीतोड़ाह, बाँटो बाजंती तणु।
दीसे मेवाड़ाह, तो सिर राण प्रतापसी॥ ५॥
चंपो चीतोड़ाह, पोरस तणो प्रतापसी।
सौरभ अकबर साह, अलियल आभड़िया नहीं॥ ६॥
पातल पाग प्रमाण, साँची साँगा हरतणी।
रही सदा लग राण, अकबर सूं ऊभी अणी॥ ७॥
माई एहा पूत जण, जेहा राण प्रताप।
अकबर सूतो ओझके, जाण सिराणे सांप॥ ८॥

---

३—अकबर रूपी घोर रात्रि में सब हिन्दुओं ने सोकर सुध बुध खो दी, किंतु संसार का रक्षक प्रतापसिंह चौकस पहरा दे रहा है।

४—हे हिन्दूपति प्रताप! हिन्दुओं की पत रखो, अपनी प्रचंड प्रतिज्ञा पालन के लिये विपत्ति संताप सहो।

५—हे चित्तौड़ के स्वामी राणा! प्रतापसिंह, मेवाड़पति की पगड़ी तुम्हारे ही सिर पर दिखाई दे रही है।

६—चित्तौड़पति प्रतापसिंह चंपा का फूल है उसकी सुरभि के सामने अकबर रूपी भौंरा आ नहीं सकता।

७—राणा साँगा के पोते प्रतापसिंह की ही पगड़ी सच्ची है जो अकबर के सामने नीची न हुई।

८—हे माँ! अगर पुत्र उत्पन्न करना है तो प्रतापसिंह के समान ही पैदा कर, जिसको सिरहाने का साँप समझ कर अकबर सोते हुए चौंक पड़ता है।

राखो अकबरियाह, तेज तिहारो तुरकड़ा।
नम नम नीसरियाह, राण बिना सहरावजी ॥ ९ ॥
सह गीदड़ियाँ साथ, एकण बाड़े बाड़ियो।
राण न मानी नाथ, साँडे सिंह प्रतापसी ॥ १० ॥

पत्र पढ़कर महाराना खड़े हुए। उनकी आँखें लाल हो गईं। मंत्री ने उनका यह भाव देखकर डरते हुए पूछा—"क्या समाचार है?"

प्रतापसिंह ने तब उच्चस्वर से वह पत्र पढ़कर सबको सुनाया।

मुसलमान सैनिक ने कहा—"मेरे लिये क्या आज्ञा है?

महाराना—तुम जा सकते हो। उत्तर लिखने की आवश्यकता नहीं है। पृथ्वीराज से सम्मानपूर्वक कहना कि उनकी ही इच्छानुसार काम होगा।

दूत सम्मान प्रदर्शन कर चला गया। शीघ्रही एक लोहू-लुहान भील योद्धा हाँफते हाँफते वहाँ पर आया, महाराना ने पूछा—"क्या समाचार है?"

उसने प्रणाम कर हाथ जोड़ कहा—"भयानक विषय है! स्वर्गीय जयमलसिंह के पुत्र रतनसिंह और देवलवरराजतनया कुमारी यमुना देवी को शाहबाजखाँ ने दिउयर दुर्ग में कैद किया है।"

---

९—हे बादशाह अकबर! तेरे तेज से सभी पराजित हो-गये सिर्फ महाराणा प्रताप ही गौरव से मस्तक उठाए हुए हैं।

१०—हे अकबर! सब गीदड़ राजाओं को तूने अपने वश में कर लिया, किंतु सिंह प्रतापसिंह का तू स्वामी नहीं हो सकता।

देवलवरराज काँप उठे। अमरसिंह ने तलवार की मूँठ में हाथ रखा। प्रतापसिंह ने शिर के बाल ऊपर की ओर करने की चेष्टा की, सब राजपूत तलवार हाथ में लेकर उठ खड़े हुए। तब प्रतापसिंह ने कहा—"योधागण! तुम सब जानते हो रत्नसिंह और यमुना तुम लोगों के परिवारों के प्रतिनिधि होकर पाँच भीलों को साथ लेकर चित्तौडेश्वरी के चरणों में अन्तिम पूजा देने गये थे। उनके ऊपर यह विपद! इस समय क्या किया जाय?

योद्धाओं ने सम स्वर से कहा—'युद्ध! युद्ध! युद्ध!

थोड़ी ही देर में राजपूतों ने, वन्हिलोलुप पतंगों के समान शत्रु का विरोध करने के लिये यात्रा की, परिवार वर्ग की रक्षा के लिये वहाँ पर दो सौ सैनिक बचे रहे। क्या परिणाम होगा? कैसा भविष्य है? उस समय यह सोचने का वक्त न था। प्रतापसिंह उस थोड़ीसी सेना को लेकर फिर रण-समुद्र में कूद गये।

## त्रिंश परिच्छेद

### उत्साह की सफलता

दोपहर के समय देउयर दुर्ग के भीतर एक विस्तीर्ण प्रकोष्ठ में परिषदों के साथ शाहबाजखाँ बैठा है। एक दूत ने प्रवेश कर कहा—"एक तरुण युवक और युवती पकड़े गये हैं। उनके लिये हुजूर की क्या आज्ञा है?"

शाहबाज—उनको यहाँ ले आओ। कदाचित् उनसे प्रतापसिंह के समाचार मालूम हो जायँ।

दूतने सम्मान सहित प्रस्थान किया और थोड़ी देर में सिपाहियों से घिरे हुए यमुना और रतन को लेकर पुनः उपस्थित हुआ। लज्जा से यमुना का मुख म्लान, वर्ण पीला, गति मन्थर और मस्तक नीचा था। क्रोध से रतनसिंह का मुख लाल था, आंखें प्रदीप्त, गति वेगवती, छाती उभरी हुई और मस्तक उठा हुआ था। लज्जानत यमुना धीरे धीरे शिर नीचा किये हुए एक कोने में खड़ी होगई। शाहबाज़खाँ और उसके सहचर गण कुमारी के सौंदर्य के संदर्शन से मुग्ध हो गये। वे सब उद्देश्य भूलकर सतृष्ण आँखों से कुमारी की ओर देखते रह गये। रतनसिंह ने यह सब देखकर कड़कते हुए कहा,—"मुझे यहाँ किस लिये लाये हो?"

शाहबाज़खाँ ने यह सुनते ही पुनः काँप कर रतनसिंह की ओर देखा। उनकी आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं। शाहबाज़खाँ ने सोचा जिस जाति में ऐसे ऐसे युवाओं का अभाव नहीं है, वह जाति अवश्य है! फिर उसने धीरे धीरे कहा,—"वीर! क्या तुम सुख की आशा नहीं करते हो?"

रतनसिंह ने कोमल कंठ से कहा—"मनुष्य की क्या सब आशाएँ पूर्ण होती हैं?"

शाहबाज—वीर! तुम्हें मुक्त करने को मेरी अनिच्छा नहीहै।

रतनसिंह—मैं दुर्गपति के हृदय की प्रशंसा करता हूं, किन्तु यह याद रहे कि मैं जीवन रहते शत्रु के निकट उसके अनुग्रह का भिखारी नहीं हूं।

शाहबाज—प्रतापसिंह इस समय कहाँ हैं?

रतनसिंह—प्रताप वनवासी, प्रताप राज्यभ्रष्ट, उनके संवाद की आपको कुछ आवश्यकता नहीं है।

शाहबाज—क्या तुम नहीं जानते प्रताप ने हाल ही में बादशाह की अधीनता स्वीकार की है ?

रतनसिंह—क्या तुम नहीं जानते मेवाड़ में रत्ती रत्ती खोजने से भी प्रतापसिंह नाम का कोई व्यक्ति न मिलेगा ?

शाहबाज—तब क्या प्रताप जीवित नहीं हैं ?

रतनसिंह—मैं यह बतलाने के लिये तय्यार नहीं हूं।

फिर शाहबाज की आँखें उसी रूप-सागर में डूब गईं। वह फिर मुग्ध हुआ। यमुना लज्जा से मुरझा गई। रतनसिंह ने फिर प्रचंड स्वर से कहा;—"मेरे लिये अपने कर्तव्य की व्यवस्था करो।"

शाहबाज—हिन्दू युवक! तुम्हे मुक्त करता हूँ। तुम जहां चाहो जा सकते हो। सिपाही रतन को मुक्त कर अलग खड़े हुए। पर रतनसिंह न गये। शाहबाजने फिर कहा,—"तुम गये क्यों नहीं ?"

रतन—कुमारी के लिये तुम्हारी क्या आज्ञा होती है उसके लिये रुका हूँ।

शाहबाज-उसका तुमसे कुछ संबंध नहीं। तुम मुक्त हो, जाओ।

रतन ने हँसकर कहा—राजपूत तुम्हारे समान स्वार्थी नहीं होते।

शाहबाज—तब क्या तुम मुक्ति नहीं चाहते ?

रतनसिंह—मैं ऐसी मुक्ति से घृणा करता हूं।

शाहबाज—इस सुन्दरी की माया छोड़ कर जाना चाहते हो तो जाओ नहीं तो फिर बंदी होओ।'

रतन—तय्यार हूं।

शाहबाज—सुन्दरी । तुम्हारे लिये इस भ्रांत युवा के समान कठोर विचार नहीं हो सकता। तुम्हे बंदिनी करना असाध्य है। इस कोमल आँख की ही मधुर चितवन के सामने तलवार खड़ी नहीं रह सकती हृदय की तो बात ही क्या है। मै तुम्हें बंदी नहीं कर सकता स्वयं तुम्हारा बंदी हूं।

रतनसिंह ने क्रोध से कंपित स्वर में कहा—" मूढ। यवन सावधान ! "

शाहबाज—सुनो रक्षिगण, इस सुंदरि को मेरे प्रमोद के कमरे में ले जाओ मैं शीघ्र ही वहां जाता हूं। और इस युवक को कारागार मे रक्खो।

बात समाप्त भी न होने पाई थी कि भूखे शेरके समान बिजली की चमक से भी शीघ्र रतनसिंहने शाहबाज के ऊपर झपट कर उसकी गरदन दबाई और जोर से उसके मस्तक में आघात पहुं-चाया शाहबाज बेहोश हो कर भूमि में गिर पड़ा। सिपाही 'मारो'। मारो' कह कर रतनसिंह पर झपटे किंतु शाहबाज का जीवन संकट में देखकर उनको रतनसिंह से बदला लेने का अवसर न मिला। शाहबाज का आघात सांघातिक न हुआ थोड़ी ही देर बाद होश में आकर उसने कहा, वध करो, इस का वध करो। "

सिपाहियों ने रतनसिंह को पकड लिया।

शाहबाज ने फिर कहा—" इस युवती को पकड़ कर मेरे कमरे में ले जाओ। "

सिपाही यमुना को ले जाने लगे। कुमार रतनसिंह, क्रोध और अपमान से विकल हो गये, यमुना धीरे धीरे चेतनाशून्य हो गई। शाहबाजखाँ ने कहा—" इस रमणी को अलग ले

आकर इसकी सेवा—शुश्रूषा करो।"

उसी समय थोड़ी दूर पर घोर चीत्कार—ध्वनि सुनाई दी। शाहबाजखाँ ने आश्चर्य से पूछा- "क्या बात है!" शब्द और अधिक हो उठा। एक लोहूलोहान सैनिक ने आकर कहा-"नवाब साहब, सर्वनाश हो गया। बहुत सी राजपूत सेना ने छावनी में आक्रमण किया है। हम कोई भी तय्यार नहीं हैं। सर्व्वनाश!! इस समय तक शायद हमारी आधी से अधिक सेना मारी गई होगी,-"

शाहबाज ने उठकर पूछा,-"मुरादबक्स कहां हैं?

"वह पहले ही मारे गये।"

"रहीम खाँ!"

"तलवार! तलवार!! चिल्ला रहे हैं।"

शत्रु की चीत्कार ध्वनि बहुत नजदीक सुनाई दी शाहबाज ने कहा,-"शत्रुसंख्या कितनी है?"

"संख्या में अधिक नहीं हैं, किन्तु वे जिस उत्साह से लड़ रहे हैं उसके सामने असंख्य सेना भी नहीं ठहर सकती,"

शाहबाज ने कहा—"मेरी तलवार और ढाल दो,

सैनिक ने कहा,-"जान पड़ता है अब उनकी विजय होने में कुछ भी बाकी नहीं है,"

एक आदमी उनकी ढाल और तलवार ले आया वे जल्दी तय्यार होकर बाहर गये, सैनिक उनके आगे आगे चला। किंतु वे तम्बू से बाहर भी न निकल सके थे कि शत्रु उन पर टूट पड़े। रक्षक गण रतनसिंह और यमुना को छोड़ कर उनकी सहायता को दौड़े। रतनसिंह यमुना के निकट आकर उसे होश में लाने लगे। क्रमशः यमुनाने होश में आकर

कहा,—"यह हल्ला क्यों हो रहा है ?"

रतनसिंह–राजस्थान के भगवान अनुकूल हुए जान पड़ते हैं। हमारे महाराना का कंठस्वर सुनाई दे रहा है। तुम ठहरो मैं देख आता हूं।

रतनसिंह ने शीघ्रगति से जाकर देखा तंबू के द्वार में घोर युद्ध हो रहा है। शाहबाज खाँ के अधीन दशसहस्र सेना में से चार हजार बाकी रह गई। छै हजार राजपूत उनसे घोर युद्ध कर रहे हैं। क्रमशः शत्रु का बल क्षय होने लगा और हिन्दुओं की जयध्वनि से आकाश कांप उठा। शाहबाज खाँ ने कुछ देर युद्ध रोक कुछ विचार कर एक इशारा किया। इशारा पाते ही उनकी तीन सौ सेना विपरीत दिशा को भागने लगी। राजपूतों ने बड़े वेग से उनका पीछा किया। रतनसिंह और अमरसिंह पीछा करने वालों के अगुवा हुए। प्रतापसिंह मंत्री सहित वहीं रहे। प्रताप ने कहा–" जान पड़ता है मुसलमान समीप के किसी यवन अधिकृत दुर्ग में आश्रय ग्रहण करेंगे। अतएव केवल इतनी सेना से हम उनके साथ नहीं लड़ सकते। इसका क्या उपाय किया जाय?"

मंत्री ने उत्तर दिया,–"सेना प्रस्तुत है। आज्ञा पाते ही दो हजार सेना महाराना की पताका के नीचे प्रस्तुत कर सकता हूं।

इसी समय यमुना ने धीरे धीरे महाराना के समीप आकर प्रणाम किया। महाराना ने सस्नेह कुमारी का मस्तक चुम्बन कर कहा,—"वत्से! तुमने अत्यंत कष्ट पाया, किंतु अब कुछ आशंका नहीं है। मेवाड़ की यह दुर्दशा अब अधिक

दिन न रहेगी। मंत्रि ! तुम शिविका और वाहक संग्रह कर यमुना को निर्दिष्ट स्थान में लेजाओ और एक हजार सेना सहित शीघ्र ही मुझसे अमेतदुर्ग में मिलो। मैं इस समय अब जाता हूँ।"

यह कह कर महाराना घोड़े पर चढ़ कर चल दिये।

## एकत्रिंश परिच्छेद।

### आशा की अतृप्ति।

जय और पराजय सब विधाता की इच्छा पर निर्भर है। सौभाग्य २ का अनुगामी है। जिन मेवाड़वासियों का भाग्याकाश घटा से आच्छन्न था एक ही हवा ने यह सब घटाएँ उड़ा दीं। फिर उस गगन में शनैः शनैः सहस्र किरणधारी भगवान् भास्कर का उदय हुआ। एक एक कर महाराना अपने जीते हुए नगरों का उद्धार करने लगे। एक दुर्ग के बाद दूसरा दुर्ग, एक ग्राम के बाद दूसरा ग्राम, एक नगर के बाद दूसरा नगर शीघ्र ही क्रमशः प्रतापसिंह के हस्तगत होने लगे। चित्तौड़, अजमेर, और मंगलगढ़ के सिवा मेवाड़ का समस्त अंश फिर महाराना के शासन के अधीन हुआ। फिर महाराना की जयपताका मेवाड़ दुर्गों में फहराने लगी। फिर मेवाड़ मुसल्मानों के हाथ से मुक्त हो आनंद से पुष्पांजलि देकर देवी-देवताओं की आराधना में प्रवृत्त हुआ। जनशून्य श्मशानवत् मेवाड़ के समस्त नगर मानव समागम से मानो हँसने लगे। फिर उदयपुर नगर आनंद से महाराना को वक्ष में लेकर क्रमशः धन-धान्य से परिपूर्ण हुआ और मेवाड़ सुखमय हो गया। प्रतापसिंह का घोर उद्यम, असाधारण तेज और अतुल अध्यवसाय का फल इतने दिन में

फला। इतने दिन बाद उनकी भाग्यलता में पुष्प खिले। वन वन निराहार भटक कर उन्होंने सपरिवार जो असह्य यंत्रणाएँ झेली थीं इतने दिन बाद वे सार्थक हुईं। प्रताप की कठिन प्रतिज्ञा के वशवर्ती होकर मेवाड़वासियों ने जन, धन, गृह की ममता त्याग कर जो क्लेश सहन किये थे उसके बदले में उनको फिर सुख मिला। और मेवाड़ के अतुलनीय वीरगण! तुमने जो स्वदेश के हितार्थ, अपने धर्म्म की रक्षार्थ, अपने गौरव के लिये प्रसन्न चित्त से जो अपने शरीर का रक्त बहाया-रणस्थल में इच्छा पूर्वक प्राणत्याग किया, तुम्हारे उस अत्यंत अनुराग का फल इतने दिन बाद फला। इतने दिनों के बाद इतने कष्ट से मेवाड़ स्वाधीन हुआ।

धन्य मंत्री भवानि! तुम्हारे गुण अनन्त काल तक इतिहास के पृष्ठों में दीप्तिपूर्ण अक्षरों से लिखे रहेंगे! तुम्हारा निर्लोभ स्वभाव और उदार चित्त ही मेवाड़ के इस भाग्यपरिवर्तन का प्रधान कारण है। मेवाड़वासी सदा तुम्हारा नाम कृतज्ञता पूर्वक हृदय में अंकित किये रहेंगे। पृथ्वी में तुम्हारा यश चिर-काल तक रहेगा। किस किस की बात कहें? किस किसका नाम लें? हल्दीघाटी युद्ध से मेवाड़ की आधुनिक स्वाधीनता पर्यंत युद्ध में जिन वीरों ने प्रभु की प्राणरक्षार्थ तथा देश की दुर्दशा का अंत करने के लिये अपने प्राण निछावर किये, किसी जाति के इतिहास में ऐसा उत्सर्ग नहीं देखा जाता। धन्य वीर प्रसविनी राजस्थान भूमि! धन्य भूतल में तुम्हारी अतुल-नीय सतान!

उदयसागर के समीप विशाल वट के पेड़ की छाया में

महाराना प्रतापसिंह धीरे धीरे टहल रहे हैं। सरोवर में बालक-बालिका गण प्रीति प्रफुल्लित मन से हँसते हँसते तैर रहे हैं, कुछ दूर सुन्दरियाँ जल की तरंग उठाकर उसमें अपने हास्य की तरंग मिला रही हैं, समीप ही मेवाड़वासी आनन्द और उत्फुल्ल मुख से, अपने सौभाग्य से गौरवान्वित हो रहे हैं। महाराना यह सब देखकर और सुनकर उस सुखमय सरोवर के निकट आनन्द में मग्न हो रहे हैं। वह मृदुस्वर से कहने लगे, "अहा कैसे शुभ दिन का उदय हुआ! यह मेरी संतानवत् प्रजा, इनका आनंद देख सकने की आशा इस जीवन में न थी। धन्य भगवान् एकलिंग!"

इतनेही में पीछे से एक व्यक्ति ने कहा,—"धन्य भगवान् एकलिंग! हम उनके ही प्रसाद से आज महाराना के मुख कमल में हँसी देख रहे हैं।"

वह व्यक्ति मंत्री भवानी थे। महाराना ने कहा,—"इसका कारण तुम्हारा ही उदार हृदय है।

भवानी—क्या अब भी कोई आशा अपूर्ण है?

प्रतापसिंह ने हँसते हुए कहा,—"प्रतापसिंह की आशा क्या कभी पूरी होगी? बिना चित्तौड़ जय किये मैं इस जय को जय नहीं कह सकता। शरीर की जो दशा है उससे जान पड़ता है अब अधिक दिन जीवित न रहूंगा। अतएव चित्तौड़ को मैं जय कर सकूंगा? ऐसी आशा नहीं है। कारण घोर क्लेश और परिश्रम से मेरी देह क्रमशः दुर्बल होती आ रही है। इसी लिये चित्तौड़ जय की आशा मुझे एक प्रकार से छोड़नी ही पड़ रही है। मेवाड़ को पूर्ण रूप से स्वाधीन न

कर सका, यही मेरा महान् दुःख है। किंतु क्या करूं? जो भी हो, इस समय मेरी एक बड़ी प्रबल इच्छा है। प्रियतम अमर और रतन का विवाह-उत्सव यदि मेरी मृत्यु के पहले हो जाता तो अत्युत्तम था।

कुछ देर विचार कर मंत्री ने दीर्घनिश्वास के साथ कहा,—"यह दास शीघ्र ही आपकी इच्छा पूरी करेगा।"



# द्वात्रिंश परिच्छेद

## हताश प्रेमी

आगरा नगर के प्रासाद-मूल को विधौत कर श्यामांगी यमुना कलकल छलछल शब्द करती हुई अपने मन से बह रही है। प्रासाद के एक कमरे में दो युवतियाँ बैठ कर बातें कर रही हैं। पाठक दोनों युवतियों से परिचित ही हैं। एक सुन्दरी मेहरउन्निसा है, दूसरी शाहजादी बन्नू।

मेहरउन्निसा ने कहा,—"जान पड़ता है अभी तुम्हारे फूल खिले नहीं?"

बन्नू ने हसते हँसते कहा,—"छिः, फूल खिलने की बात नहीं। तुम्हें अभी इतनी उत्कट चिंतिता देखती हूँ, नहीं कह सकती विवाह होने पर वह चिंता कितनी बढ़ जायगी, मेरे विवाह की बात जाने दो।"

मेहरउन्निसा ने कुछ विमर्ष भाव से कहा,—"शाहजादी ! मेरी चिंता का विशेष कारण है। मेरे समान द्विविधा में कोई नहीं पड़ा होगा। क्या कहूँ बहिन, मेरी अवस्था कैसी है- एक ओर रूप, धन, गौरव, पद, प्रभृति जिसकी आवश्यकता हो सब कुछ प्रचुर है, और एक ओर गुणहीनता, दारिद्रता इत्यादि का भय है। एक ओर सुरा, मोह, इन्द्रिय-तृष्णा, भ्रांति, दूसरी ओर प्रेम, विद्या, अनुराग इत्यादि हैं। देख, इन दोनों में से एक को पसंद करना कितना कठिन है। बहिन, मेरे हृदय में जो कष्ट है वह तुझे कैसे मालूम होगा। जिस लोभ के वश में मैं हुई हूँ, उसके वश मानव हृदय धारण कर कोई न हुआ होगा।

बहू- बहिन, तुमसे एक बात और पूछूँगी-क्या तुम्हारे हृदय के ऊपर शाहजादे सलीम का कुछ आधिपत्य नहीं है ?

मेहरउन्निसा नीरव रही। कुछ देर बाद कहने लगी,—"कौन कह सकता है आधिपत्य नहीं है ? शाहजादे ने मेरे हृदय के भीतर आग सुलगाई है। वह आग मुझे जलावेगी-एक दिन नहीं-दो दिन नहीं-चिरकाल तक जलाती रहेगी। किंतु बहिन ! मैं वह ज्वाला सहूँगी-चुपचाप सहूँगी, पर जिस जल में डूबने से वह आग बुझ सकती है, मैं उसमें न डूबूँगी। वह आग न बुझेगी, कोई उसे जान भी न सकेगा। कबर की शीतल मट्टी ही उसकी ज्वाला को शांत करेगी।

मेहरउन्निसा ने रूमाल से मुहँ ढक लिया। बहू की आँख से आँसू गिरने लगे। वह भी नतमस्तक हो बैठी रही। दोनों

मूर्त्ति के समान नीरव रही। इसी समय एक परिचारिका ने आकर सम्मानपूर्वक कहा,—" शाहजादी, बादशाह ने आपको स्मरण किया है।"

बन्नू ने कहा,—" दिदि ! कुछ देर बैठी रहो, मैं बादशाह से मिल कर अभी आती हूँ।

मेहर ने कहा,—" जाओ।"

परिचारिका के साथ बन्नू ने प्रस्थान किया। मेहरउन्निसा अन्यमनस्क भाव से पास के एक पुष्पगुच्छ में से एक गुलाब का फूल लेकर क्रीड़ा करने लगी।

चुपचाप पीछे के खुले द्वार से कोई आकर मेहरउन्निसा के पीछे खड़ा हो गया और अति मृदुस्वर से कहा,—"मेहर ! संसार में क्या न्याय नहीं है ?"

मेहरउन्निसा चमक उठी। मुहँ फिराकर देखा प्रश्नकारी सलीम थे। मेहर सम्मानपूर्वक उठी और लज्जावनत मुख से खड़ी रही। सलीम ने फिर कहा,—" सुन्दरि ! कब तक इस आशा को रक्खे रहूँ ?"

मेहरउन्निसा के वक्त्र ने लज्जा, चिन्ता, मनस्ताप, क्लेश, आदि के मिलन से एक अपूर्व भाव धारण किया। वह चुप रही, शाहजादे के प्रश्न का क्या उत्तर देवे उसे कुछ समझ न पड़ा। सलीम ने फिर कहा,—" जान पड़ता है तुम कुछ सोच रही हो ! जो कुछ सोचो मेहर ! तुम्हारे प्रति मेरे हृदय का जितना अनुराग है, वह बिलकुल बद्धमूल है। किसी प्रकार उसका उच्छेद संभव नहीं। तुम्हें भूलने के लिये बहुत उपाय किये, किंतु इस जीवन में तुम्हें न भूल सकूँगा। प्रमोद कानन में या समरक्षेत्र

में, आत्मीयों के मध्य में या शत्रु के बीच में कहीं भी मैं तुम्हें एक क्षण मात्र को भी नहीं भूल सकता। किंतु मेहर! मैं अब यह लुब्ध आश्वास नहीं सह सकता। तुम से प्रार्थना करता हूं, तुम आज अपने मनकी बात कहो।"

मेहर की आँखों से आँसू गिरने लगे। वह मस्तक नीचा किये थी शाहज़ादा उसके आँसुओं को न देख सके। शोक कंपित-स्वर में सुन्दरी ने कहा,—"आपके साथ विवाह होना जान पडता है विधाता की इच्छा नहीं है! मैं अब जाती हूं।"

"जाती हो? जाओ, तुम से अब कुछ कहने ही को नहीं है, कुछ जानने ही को नहीं है। जाओ, ईश्वर तुम्हें सुखी करें। सुनो एक बात-अंतिम बात सुन जाओ। नहीं, नहीं—जाओ-मैं कुछ न कहूंगा। अपने हृदय की यातना तुमसे कहने से क्या लाभ?"

शाहज़ादे की आँखों से आँसू गिरने लगे। मेहर धीरे धीरे चली गई। शाहज़ादे की आँखों से अविरल अश्रुधारा बह चली। उन्होंने निराश होकर अस्फुट स्वर में कहा,—"मेहर! हाय! यह मैं आज तक क्यों न जान सका?"

सलीम ने रूमाल से मुख ढक कर कुछ देर रुदन किया। उसी समय सलीम के अज्ञान में बादशाह वहां पर आकर खड़े हो गये। सलीम ने रूमाल हटाकर देखा मेहर चली गई या नहीं। आँख खोलते ही उसने देखा मेहर की जगह बादशाह अकबर खड़े हैं। सलीम घबड़ा कर सम्मान प्रदर्शित कर दूर खड़े हो गये। बादशाह ने कहा,—"बहुत दिनों से तुम से कुछ कहने को हूं, किंतु आज तक न कह सका। दूसरे व्यक्ति के द्वारा मैंने यह तुमसे कुछ कहलाया भी आज स्वयं कहता हूं। मेहरउन्निसा

के साथ विवाह करने के लिये तुम अत्यंत उत्कंठित हो। वह कन्या बहुत रूपवती है यह मैं जानता हूं। किंतु उसके साथ तुम्हारा विवाह नहीं होगा। एक दूसरे व्यक्ति के साथ उसका विवाह स्थिर किया है। वह संबंध मेहरउन्निसा के पिता को स्वीकार है। लोकतः तथा धर्मतः उस कन्या का विवाह होगया है। दूसरे से किसी प्रकार अब उसका विवाह नहीं हो सकता। यदि उसके प्रति तुम्हारा दुर्दमनीय अनुराग है तो उसे रोको यही मेरा अनुरोध है, यही आज्ञा है। इस आज्ञा का यदि किसी प्रकार उल्लंघन होगा तो वह मेरी विरक्ति का कारण होगा। सलीम ! सावधान !"

सलीम ने सविनय कहा,—"बादशाह की आज्ञा शिरोधार्य।"

बादशाह ने संतुष्ट होकर कहा,—"राज्य के कुछ समाचार जानते हो ?"

"नहीं—क्या कोई नया समाचार है ? राजपूत-युद्ध में क्या हमारी जय होगी ?"

"तुम अभी राजपूत—युद्ध को नहीं भूले हो, देखता हूं हल्दी घाटी-युद्ध के बाद से तुम्हारा राजपूत के ऊपर अत्यंत अनुराग हो गया है।"

"उनके बराबर वीर जाति इस संसार में और कोई नहीं ऐसा जान पड़ता है। उस युद्ध में यदि आप होते तो उनके वीरत्व से विमोहित होकर उन्हें सानन्द चिर स्वाधीनता अर्पित करते।"

"आजकल प्रतापसिंह ने मेवाड़ के उद्धारार्थ विशेष वीरत्व दिखाया है।"

"उनके विरुद्ध सेना जायगी क्या ?"

" नहीं—उनके विरुद्ध आज कल कोई चेष्टा नहीं की जाती। इसी के संबंध में मैं तुम से कुछ कहता था। वहां बहुत गड़बड़ हुई है। तुम वहां जाने के लिये तय्यार हो ? "

" हां यह दास तय्यार है। "

" उत्तम। आओ कर्म्मचारियों के साथ इस विषय में परामर्श करें। " सुकोशाली अकबर और हताश-प्रेमी सलीम ने उस कमरे से प्रस्थान किया। जाते समय सलीम ने फिर कर देखा उस समय उस कमरे में मेहर का कोई भी चिन्ह शेष न था।

# त्रयत्रिंश परिच्छेद।

## अंत में।

घोर परिश्रम, अत्यन्त मानसिक उद्वेग, निरंतर अनियमित रहने से प्रतापसिंह का स्वास्थ बहुत खराब हो गया, धीरे धीरे व्याधि ने आकर उनकी सुगठित कांति को ग्रस लिया। दारुण दुर्बलता ने आकर क्रमशः उस वीरेन्द्र केसरी को शय्या-शायी कर दिया। अंत में उनकी ऐसी खराब दशा हो गई कि चिकित्सकों ने उनके जीवन की आशा छोड़ दी।

वीरवर प्रताप शय्या में पड़े हैं। उनके चारों ओर मेवाड़ के प्रधान प्रधान योद्धा बैठे हैं। सब नीचा मुख किये दुःखी हैं। कैसा भयङ्कर संवाद ! आज मेवाड़वासी श्रीहीन होंगे, आज मेवाड़वासी पितृहीन होंगे, सहायक हीन होंगे। आज प्रतापसिंह की आत्मा देह का त्याग करेगी कैसा भयंकर दिन है !



प्रतापसिंह ने धीरे धीरे मंत्री का हाथ पकड़ कर कहा,—भवानि ! "मेरी इच्छा पूरी न कर सके।"

"महाराना ! दास आपकी इच्छा पूरी करने को प्रस्तुत है।"

दो सिंहासन प्रतापसिंह के चरणों के पास रक्खे गये। थोड़ी देर में कुमार अमरसिंह और रतनसिंह तथा कुमारी ऊर्म्मिला और यमुना ने नवीन वस्त्र धारण कर वहां प्रवेश किया। उन्होंने आकर भक्ति भाव से महाराना के चरण छूकर पद धूलि ग्रहण की। प्रतापसिंह ने कुमार अमरसिंह और ऊर्म्मिला का हाथ पकड़ कर कहा,—"वत्स ! समृद्धि से तुम दोनों का विवाह कर हृदय को तृप्त करने की उत्कंठा थी—विधाता ने यह उत्कंठा पूरी न की। आज मैं इसी दशा में मेवाड़ के प्रधान गणों के सामने तुम दोनों को विवाह के पवित्र बंधन में बद्ध करता हूं। आशीर्वाद देता हूं तुम राजधर्म पालन कर अक्षय सुख से जीवन को परिपूर्ण करोगे।"

मंत्री ने उन दोनों को समीप के सिंहासन में बैठाया। महाराना ने फिर रतनसिंह और यमुना का हाथ पकड़ कर कहा—"पुत्राधिकप्रियतम रतन ! स्वर्गीय जयमलसिंह का नाम मेरे हृदय में ज्योतिपूर्ण अक्षरों से अंकित है। तुम्हें सुखी देख कर जाने की इच्छा थी। आज देवलवरराज—तनया यमुना के साथ तुम्हारा विवाह हुआ तथा गोगन्डा—दुर्गाधीन प्रदेश तुम्हारा हुआ। प्रार्थना करता हूं, तुम भार्या सहित अमर के साथ सदा भाई के बंधन में बद्ध होकर परम सुख से दिवस बिताओगे।"



मंत्री ने उन दोनों को दूसरे सिंहासन में बिठाया। मेवाड़ के नगाड़े बजने लगे। अमरसिंह के मस्तक के ऊपर श्वेतछत्र स्थापित हुआ, सामने लाल केतन फहराने लगा। प्रधान गण्‌ ने जयध्वनि कर अमरसिंह का सम्मान किया। किंतु यह उत्सव आनन्द हीन था। अमरसिंह की आँखों से आँसू गिर रहे थे। प्रतापसिंह की दशा बहुत खराब हो गई थी। उन्होंने फिर धीरे धीरे कहा,—"पुत्र! रोते क्यों हो? जन्म और मृत्यु विधाता का अटल नियम है। शांत होओ। मेरे लिये अब विलम्ब नहीं है। इस थोड़े से समय में जो कुछ कहूं उसे ध्यान-पूर्वक सुनो।" अमरसिंह आँसुओं को न रोक सके। प्रताप ने फिर कहा,—"वत्स! मृत्यु इतनी दुःखद वस्तु नहीं है। संसार में कीर्ति, यश, गौरव और मान शून्य होने की अपेक्षा मृत्यु भयंकर नहीं है। मैं दुखी हूं सही, पर मेरे मन में जो निमल आनद है उसके सामने पृथ्वी का साम्राज्य तुच्छ है। मैंने अन्यान्य राजपूतों के समान शत्रुओं से अपना जातीय गौरव नहीं बेचा यही मेरे आनन्द का मूल कारण है। प्रियतम! इस संसार में जो मनुष्य जातीय गौरव को अक्षुण्ण रख कर मरता है वही धन्य है। वत्स! मुझे भय है तुम से मेरा गौरव अक्षुण्ण न रह सकेगा। प्राणाधिक! मृत्युशय्या मुझे कुछ भी यातना नहीं पहुंचा रही है। केवल एक भावना, एक चिंता, एक दुःख मेरे चित्त को व्याकुल कर रही है। प्रताप जाता है मेवाड़ अब गौरव शून्य हो जायगा यही मेरी एकमात्र चिंता है। इसी चिंता से मैं उन्मत्त तन अस्थिर हो रहा हूं। भाइयो! यह अभागा प्रताप सदा दुखी हो रहा। यदि इस समय जान लूं कि मेरी अनुपस्थिति में मेवाड़ का गौरव सुरक्षित रहेगा तो सिर्फ इतने ही से

में मृत्यु के समय परम सुख भोग कर लूंगा।

गद्गद् शैलम्बराज ने निकट आकर महाराणा के चरण छूकर कहा,—"देव! मैं आपके चरण छूकर तथा भवानी का नाम स्मरण कर सबके सामने शपथ पूर्वक कहता हूं जीवन रहते नवीन मेवाड़ेश्वर को कभी कलंकित न होने दूंगा। "साथ ही सब उपस्थित वीरों ने हुंकार त्याग कर कहा,—"यही होगा-यही होगा—यही होगा।"

महाराना के चरण अपने हृदय में स्थापित कर कुमार रतन-सिंह ने कहा,—"इष्टदेव के नाम से कहता हूं, जीवन में जिसके अनुग्रह से रक्षित रहा, उसकी अंतिम इच्छा कभी न भूलूंगा।

पितृदेव के चरणों में शिर रख कर अमरसिंह ने कहा,—"पितृदेव! संसार में जो कुछ पवित्र है उन सबको स्मरण कर प्रतिज्ञा करता हूं कि यह दास जीवित रहते कभी मेवाड़ के गौरव में धब्बा न लगने देगा।"

व्याधि विकल प्रतापसिंह के मुख में हास्य का आविर्भाव हुआ। उन्होंने कहा, अहा! कैसा आनंद है-इस आनंद की तुलना नहीं। किंतु मैं हतभाग्य हूं, मेरे भाग में अधिक दिन रहना न हुआ, मेवाड़! मुझे विदा दो—वीरगण मेरे लिये अब देर नहीं है।

अमर और रतन निकट आकर रोने लगे। वीरों की आँखों से आँसू गिरने लगे। प्रताप ने अंतिम बार कहा,—"रोओ नहीं, मेवाड़ के हित की चेष्टा करो।"

प्रताप ने एक हाथ से अमर और दूसरे हाथ से रतन का हाथ पकड़ा, कुछ कह न सके। सब ने देखा प्रतापसिंह के मुख

में अंतिम लक्षण प्रतीत हुए ! अब देर न थी । अमर का हाथ पकड़े हुए प्रतापसिंह ने सब को अंतिम बार निहारा । सब ने कहा –" हम कभी मेवाड़ के राजछत्र के विरोधी न होंगे ।

इसके बाद धीरे धीरे प्रतापसिंह के जीवन का दीपक बुझ गया। जिसका वीरत्व अतुलनीय था, देशानुराग अपरिमेय था, अध्यवसाय विस्मयकर था, सहनशीलता असीम थी, तेज अमानुषी था, प्रतिज्ञा प्रचंड थी, साहस और शक्ति अचिन्तनीय थी, उस परम पवित्र पुण्यात्मा प्रतापसिंह के प्राण अनन्त काल समुद्र में विलीन हो गये । अकाल में ही प्रताप-दिवाकर दिन-चक्र में डूब गया ! घोर विषाद के अंधकार से पृथ्वी समाच्छन्न हो गई।

सूर्यास्त हो गया !

❀ समाप्त ❀

मनोमोहक उपन्यास।

# चंद्रशेखर

का

## सरस, सरल और सस्ता अनुवाद।

यह बंगभाषा के सर्वश्रेष्ठ उपन्यास-लेखक श्रीबंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय की रसमयी, भावपूर्ण अमरकृति है। बंकिमबाबू भारतवर्ष के गौरव के धन एवं सर्वोत्तम उपन्यास लेखक थे, अनेक समालोचकों की राय में उनका "चंद्रशेखर" उपन्यास भारतवर्ष के उपन्यासों में सर्वश्रेष्ठ है। चंद्रशेखर की शैली, शब्दलालित्य, भावप्रकाशन सब अनुपम हैं। चंद्रशेखर का पवित्र चरित्र, प्रताप का परोपकार और विश्वप्रेम देखने योग्य है। शैवलिनी का चरित्र कवि की कोमल कल्पना की अपूर्व रचना है। इस उपन्यास को हाथ में लेकर छोड़ने को जी नहीं चाहता। मन एक कवितामई वसन्त-ऋतु के मनोहर उपवन में विहार करने लगता है। भारतवर्ष की कई भाषाओं में इसके अनुवाद हो चुके हैं। हिन्दी में हजारों कापियां बिक गई हैं। अगर आप ने अभी तक इसे न पढ़ा हो तो अवश्य पढ़िये। शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

निवेदक—

**मैनेजर भार्गव पुस्तकालय,**